MPHIN34696/6/9/17/TC

वर्ष-1, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2017 ₹ 25/-

कला समय

कला और विचार की द्वैमासिकी

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

डॉ. ओम प्रकाश सिंह के दो गीत

आत्मकथ्य: मनुष्य की समूची अनुभूति की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। शायद इसीलिए वेदों ने 'नेति-नेति' और भगवदगीता ने 'अकथनीय' या 'अवर्णनीय' कहकर अपनी संवेदना व्यक्त की है, परन्तु अन्य काव्य-विधाओं की तुलना में गीत-नवगीत में मनुष्य की सहज संवेदना को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। नवगीत द्वारा थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहना सम्भव है। इसीलिए नवगीत केवल व्यक्ति या समाज की घटनाओं और समस्याओं की सूचना ही नहीं देता बल्कि वह मनुष्य के निर्माण की भूमिका के लिए सोच विकसित करता है।

1. तंग जड़ों में अंकुर होंगे

तंग जड़ों में
अंकुर होंगे
आज नहीं तो कल।

कल जो था वटवृक्ष
बीज फिर
छोड़ गया माटी में
*टूटेगा वह भीतर-**भीतर***
अपनी परिपाटी में
हरियल पंख
लिये उड़ने को
आयेगा चंचल।

शाखाएँ
बाहें फैलाये
बांधेगी तूफान
चिंताओं के बोझ लिये
ठहरेंगे व्याकुल प्रान
दर्द-दुःखों को
बाँटेंगे जब
पात-पात आंचल।

लय में
हवा झकोरें देगी
नभ के पंख खुलेंगे
संध्या के
नीरव-शिखरों पर
इन्द्रधनुष निखरेंगे
हम तोड़ेंगे
चक्रव्यूह के
भीतर वाला छल।

2. अविश्वास की भीड़ बहुत है

अविश्वास की
भीड़ बहुत है
क्या होगा विश्वासों का

मर्यादाएँ
टूट रही हैं
सपनों के तहखानों में
अघटित
घटित हो रहा युग के
अपने ही पैमानों में
फिर यथार्थ के
पांव चुभे हैं
क्या होगा संत्रासों का।

अब संवेदन शून्य
हवाएँ तोड़ रहीं
हरियल शाखें
फिसल रहे
सम्बन्धों के पल
पथराई फिरतीं आंखें
स्नेह
कांच के गुलदस्ते में
क्या होगा अवसादों का।

झूठे पहरेदार
खड़े हैं
सच की बौनी चौखट पर
प्यास निगोड़ी होंठ चबाये
इन आंखों के पनघट पर
बारूदी
मुस्कान भरे हैं
क्या होगा इतिहासों का।

259, शांति निकेतन, साकेत नगर,
लालगंज, रायबरेली (उ.प्र.)
मो.- 99844 12970

MPHIN34696/6/9/17/TC

वर्ष-1, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2017

कला समय

कला और विचार की द्वैमासिकी

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
94250 92893

परामर्शक
ललित शर्मा
98298 96368

डॉ. वर्षा नालमे
99292 69650

बंशीधर बंधु
99260 56217

विशेष प्रतिनिधि
गोपेश वाजपेयी
94243 00234

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेंढे (एडवोकेट)

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
लक्ष्मीकांत जवणे
laxmikantjawney@gmail.com
99936 22228

साहित्य परामर्श
सजल मालवीय
99263 10994

प्रबंध संपादक
नरिन्दर कौर

सदस्यता शुल्क
वार्षिक : 150 /- (व्यक्तिगत)
: 175 /- (संस्थागत)
द्वैवार्षिक : 300 /- (व्यक्तिगत)
: 350 /- (संस्थागत)
चार वर्ष : 500 /- (व्यक्तिगत)
: 600 /- (संस्थागत)
आजीवन : 5,000 /-(व्यक्तिगत)
: 6,000 /-(संस्थागत)
(कृपया सदस्यता शुल्क ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेंजे)

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com

कला समय पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल, न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/ अव्यवसायिक

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

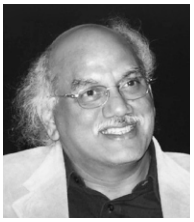

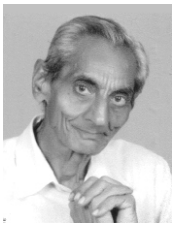

इस बार

- संपादकीय
  भँवरलाल श्रीवास /5
- कला निकष
  लक्ष्मीकांत जवणे /6
- सौन्दर्य और समरसाल्ट (साक्षात्कार)
  मोहन शिंगणे से लक्ष्मीकांत जवणे /8
- पं. उदयशंकर का नृत्य संसार
  ललित शर्मा /13
- कला और लोक के आलोक में : रानी रूपमती
  डॉ. वर्षा नालमे /20
- ओ! ये है 'आदमगढ़'
- **डॉ. नर्मदाप्रसाद सिसोदिया /26**
- **कृष्ण बक्षी के दो गीत /30**
- **महेश अग्रवाल की दो ग़जलें /31**
- **राग तेलंग की छः कविताएँ /32**
- विरासतें जड़ नहीं जीवन्त(समीक्षा)
  नर्मदा प्रसाद उपाध्याय /34
- धरती की गहरी पीड़ा में शामिल चन्द्रकांत देवताले
  राधेलाल बिजघावने /37
- समवेत (सांस्कृतिक समाचार)/41

चित्र-वीथि / सचिदा नागदेव : रंग-स्मृति प्रसंग / अपने भीतर कलादृष्टि विकसित करें : कला पत्रकार/ पं. नन्दकिशोर शर्मा स्मृति संगीत समारोह / सुविख्यात लेखिका कृष्णा सोबती को ज्ञानपीठ सम्मान / लखनऊ में डॉ. श्रीमती बिनय षडंगी राजाराम को राष्ट्रधर्म हिंदी सेवा सम्मान 2017 / अमृतलाल वेगड़ एवं श्रीमती कान्ता वेगड़ द्वारा 'कला समय' पत्रिका का लोकार्पण / पाठक-मंच पत्रिकाओं का लोकार्पण तथा विचार-विमर्श आयोजन (बैरसिया, भोपाल)।

- **स्मृति शेष / 49**
- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में
  निर्मिश ठाकर/ 50

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - **शिवम् ग्राफिक्स**, वाट्सएप नं.-07974917691, **छायाचित्र** - मनीष सराठे, **आवरण चित्र** - संदीप राशिनकर,
रेखांकन - मदनलाल मालवीय, मनोहर काजल, **सहयोग** - राहुल, हरीश, धनसिंह, दीपक पगारे, घनश्याम मैथिल 'अमृत'

संपादकीय

कला समय पाठक मंच

''कला समय'', वस्तुत: ''कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति'' की अनुषांगिकी है। यह सर्जक और प्रेमियों के बीच एक पुल का दायित्व विगत बीस वर्षों से निरंतर निभा रही है। मैं और मेरे नए साथी यह शिद्दत से महसूस कर रहे हैं कि इस पुल की चौड़ाई और बढ़नी चाहिए।

''कला समय-पाठक मंच'' इसी दिशा में एक कोशिश है।''कला समय-पाठक मंच'' के इस आरम्भ को हम अपना विश्वास सौंप रहे हैं।9 अक्टूबर 2017 से इस जुड़ाव का श्री गणेश ''शासकीय स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय, बैरसिया'' में संपन्न हुआ। माननीया प्राचार्या डॉ. श्रीमती अलका सक्सेना तथा उनके स्टॉफ की मेधा और सहृदयता ने सिद्ध किया कि सामाजिक बौद्धिक सरोकारों की प्राप्ति के लिए इन गुरुकुलों से शुरुआत ही प्रभावी परिणाम फलित कर सकती है।

''शिवम् पूर्णा'' पत्रिका का हमसफ़र होना एक सुयोग है। जल पर लक्ष्यनिष्ठ इस पत्रिका की चेष्टाएँ इसे ''कला समय'' की सहोदर बनाती हैं।

दोनों पत्रिकाओं का संयुक्त अभियान है, सर्जक और प्रेमियों की प्रतीतियों, अनुभूतियों को एक सहज और विस्तृत पथ देना। ऐसा मार्ग जो ''वन वे'' ना हो।

हम, प्रौढ़ परिपक्व प्रतिनिधित्व के साथ नवांकुरों के सृजन को भी कला फलक पर लाने के अभिलाषी हैं। हमारे नियमित और विचाराधीन स्तम्भ के सिवाय अतिरिक्त 'स्पेस' देने की मंशा ही ''कला समय-पाठक मंच'' में निहित है।

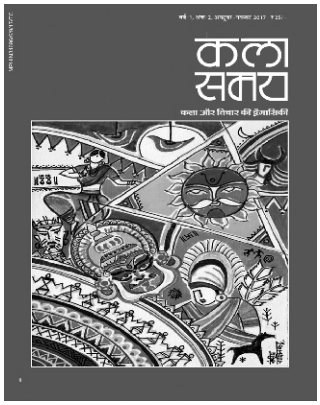

इस मंतव्य को जमीनी हकीक़त बनाने के लिए हमारे अनन्य साथी श्री गोपेश वाजपेयी सामने आये हैं। उन्होंने विलक्षण प्रतिभा को प्रति वर्ष ग्यारह हजार की राशि से सम्मानित करने का मन बनाया है। इस दायित्व निर्वाह का गौरवशाली अवसर ''कला समय'' और ''शिवम् पूर्णा'' के कन्धों पर आया है। हम गोपेश जी की इस अनुकरणीय पहल का अभिनन्दन करते हैं।

आपकी प्रतिक्रियाएँ, दरअसल पत्रिका को हाथ पकड़कर सीढ़ियों से छज्जे पर ले जाती हैं जहां से पूरा आकाश दिखाई देता है अन्यथा कला के व्योम में नागरिकता अत्यंत सीमित होने के खतरे रहते हैं।

हर पाठक खुले मन से दुविधा और सुविधा पर प्रश्नोत्तर व विमर्श के लिए सादर आमंत्रित है।

॥ दीपावली की शुभकामनाएँ ॥

– **भँवरलाल श्रीवास**

निरन्तर

कला निकष

दीपावली हर बार हमें आकर समझा जाती है कि 'पर्व', कलाओं को जोड़ने के संधि स्थल होते हैं। विशेषत: इस प्रकाश पर्व पर देश भर में भारतीय मनीषा की भाव भंगिमाओं व क्रिया प्रतिक्रियाओं के साथ, रूपंकर कलायें (Plastic arts) तथा प्रदर्शनीय कलाएं (Performing arts) दोनों एकाकार हो जाती हैं। सामान्य समय में व्यक्ति का मन सधी चाल से चलता है, परन्तु पर्व के मौके पर यही मन सधी चाल को छोड़कर एक जगह पर गोल-गोल घूमने का आनंद लेता है।

सार्वजनिक जीवन व्यवहार की यांत्रिकता से बाहर हो कर त्यौहार की संवेदनात्मकता से जुड़ जाता है, मन मान लेता है कि व्यवहार त्यौहार हो गया।

इस पर्व पर मांडने, फुलकारी, रंगोली में अपना घर समा जाता है। हर घर में अतिथि बनकर पांच लोगों का एक परिवार इस त्यौहार में शामिल हो जाता है। ये पांच लोग होते हैं:- माँ लक्ष्मी, माँ सरस्वती और भगवान गणेश अपने दो पुत्रों शुभ तथा लाभ के साथ। ये अपने आसन लगाते हैं, ठीक पासबुक और चाबियों के सामने। बंद आँख और खुले मन से इन अतिथियों के सामने बैठ जाईये, अनगिनत वरदान आपकी हमारी झोली में आ जायेंगे।

दीवारें रंगीन होती हैं, आँगन रंगोलीदार, हाथों पर मेहंदी पांवों पर अल्पनायें। अधुनातम परिधान-शेरवानी, सूट, घागरे, प्लाजो, साड़ी जींस। ओल्ड और लेटेस्ट डिजाइन के आभूषण। इत्र पर्फ्यूम्स और डीयो। पकवानों में पास्ता और पिज्जा भी केले के पत्ते पर जगह बना चुके हैं। पूजन मुहूर्त की अनिवार्यता के साथ तयशुदा विधि-विधान। मोहक ग्रीटिंग कार्ड्स, लेटेस्ट गिफ्ट,पेंटिंग्स, बुक्स, आर्ट पीसेज। इन समस्त सामग्रियों और सजावट के बीच हम। आल्हाद का चरम घटित होता है।

सौन्दर्यभास व प्रियत्व में आकंठ डूबे कलात्मकता से सराबोर।

कला के देशी आशयों ने हम लोगों के शब्द-कोष में एक खासी यात्रा तय की है।

दस बार पलक झपकते हैं तब एक काष्ठा होता है, पैतीस काष्ठा बराबर एक कला। बीस कला का एक मुहूर्त और दस मुहूर्त का एक दिन यानी 24 घंटे। समय की इकाई के रूप में 'कला' शब्द आया, फिर कार्यविधि की दक्षता बन गया, फैलते हुए राम की बारह, कृष्ण की सोलह और कल्कि की भावी चौबीस कलाओं से गुजरते हुए, आज 'आर्ट' शब्द का पर्याय बनकर 'कला' दो अक्षरों और एक मात्रा के साथ हमारे जेहन में अंकित है।

हमारी कलात्मक रूचि में क्राफ्ट, आर्ट के साथ घुला मिला है, शरबत में शक्कर की तरह। विद्या और विधा एक सिक्के के चित और पट जैसे।

कला में कृति, कृतिकार तथा कृतिप्रेमी पर बेशकीमती नजरिया वर्तमान समय तक विकसित हो चुका है, इसके सिवाय निरंतर जारी प्रयोग नई व्याकरण गढ़ने के लिए अनुरोधरत हैं।

प्रयोग की एक बानगी देखिएगा। आम तौर पर आर्ट गैलरी में एक हिदायत सजी होती है-'डोंट टच'। कल्पना कीजिये, कहीं उल्टी हिदायत हो 'प्लीज टच'। जी हाँ, सिद्धांत शाह की कला वीथिका का ये ही सच है। सिद्धांत की पेंटिंग्स 'ब्रेल लिपि' में होती हैं। इन्हें छू कर हमारे भाई उन पेंटिंग्स की चित्रात्मकता का पूरा मजा लेते हैं, बावजूद इसके कि उनकी आँखों में रोशनी नहीं है और सिद्धांत शाह के कारण रोशनी ना होने का मलाल भी नहीं है। सिद्धांत शाह का अभिनन्दन। आँखों की बंदिश के बाहर संगीत तो था अब चित्रांकन भी हो गया, परस्पर बधाई।

उजाले के इस पर्व पर एक अभिलाषा ने मन में जन्म लिया कि काश कुमार गंधर्व की रानी रूपमती और पं. उदयशंकर के साथ विमर्शनुमा गपशप होती तो वे कितना आनंदित होते।

क्योंकि उदयशंकर की ''शंकर नृत्य'' की रचना और रानी रूप द्वारा ''बाज़खानी ख़याल'' का अनुसंधान कुमार गंधर्व की मौलिकता की प्यास को निश्चित ही बुझा पाता।

विगत के कला पलों को दुबारा घटित करने के लिये ललित शर्मा और वर्षा नालमे का कला-श्रम अभिनंदनीय है।

दीयों कंदीलों और स्पर्श की रोशनियों में निर्मितियों पर पड़े घूंघट हटाकर उनकी श्रीआभा से हमारे पुलकित होने के ये पल, यही तो दीपावली का अभीष्ट है।

दीपावली के अवसर पर 'कला समय' की ओर से हार्दिक मंगलमय शुभकामनायें। सम्पदा-आरोग्य, लावण्य और खनकदार उजास क्रमशः धनतेरस, रूप चौदस तथा लक्ष्मी पूजन पर सर्वथा सिद्ध हो जाएँ।

दीपावली पर पटाखों के धूये का सवाल पर्यावरण और प्रकृति के सन्दर्भ में हमेशा उठता है।

मैं एक टिप्पणी करना चाहूँगा कि -

मनुष्य का अब तक का विकास, 'काल' के दो युगों में बांचा जाना चाहिये।

1. मनुष्य का प्रकृति से अपने आप को बचाने का काल-खंड।
2. मनुष्य का प्रकृति को अपने आप से बचाने का काल-खंड।

- **लक्ष्मीकांत जवणे**
laxmikantjawney@gmail.com
M- 099936 22228

साक्षात्कार

8 फरवरी, 1974 को नासिक (महाराष्ट्र) में जन्में श्री मोहन शिंगणे ने 1999 में नागपुर से ड्राइंग एवं पेंटिंग में स्नातक उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त औरंगाबाद से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। श्री शिंगणे प्रतिष्ठित चित्रकार हैं। ग्राफिक कला में भी आप सिद्धहस्त हैं। भारत भवन-भोपाल एवं जहाँगीर आर्ट गैलरी-मुम्बई की कलादीर्घाओं में आपकी कृतियों की एकल प्रदर्शनी आयोजित हो चुकी हैं। इसके साथ ही मुम्बई, नई दिल्ली, नागपुर, औरंगाबाद, कोलकाता, हैदराबाद, पुणे, भोपाल आदि शहरों में आपकी कलाकृतियों की समूह प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं तथा हैदराबाद, कोलकाता, नई दिल्ली, लखनऊ शिमला, पुणे, नागपुर, अमरावती आदि नगरों में आयोजित प्रदर्शनियों में भी आपने भागीदारी की है। इसके अतिरिक्त वड़ौदरा, केरल, नई दिल्ली, गुलबर्ग, चेन्नई, पुणे आदि शहरों में आयोजित कला-शिविरों में आपने शिरकत की है। श्री शिंगणे भारत सरकार की जूनियर एवं सीनियर फैलोशिप प्राप्त कर चुके हैं एवं ललित कला अकादमी के पुरस्कार सहित उन्हें और अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

सौन्दर्य और समरसाल्ट

मोहन शिंगणे शिल्पकार-चित्रकार से लक्ष्मीकांत जवणे की बातचीत

भारत भवन की रूपाभ श्रृंखला के अंतर्गत रंगदार्शिनी दीर्घा में उस समय मोहन शिंगणे के ऑब्जेक्ट्स के साथ मैं और भंवरलाल श्रीवास ही थे। जोर देकर इसलिए कह रहा हूँ कि यह सुयोग ही था जो उस विलक्षण सृजन प्रभाव से हम जुड़कर तृप्त हो पाये। श्री उदयन वाजपेयी के शब्दों में ''व्यावहारिक शब्दों के अर्थ में ये स्कल्पचर्स नहीं हैं। इसके सिवाय नकारा भी नहीं जा सकता कि ये और कुछ नहीं पर स्कल्पचर्स ही हैं। इस शिल्प में यह तर्कसंगत अस्पष्टता क्यों है ? क्यों ये स्कल्पचर्स नहीं हैं और हैं भी ?''

समाधान के लिए शिल्पी मोहन शिंगणे से मोबाईल पर संपर्क करने पर जो आवाज सुनी वह खरज (खर्ज) सप्तक का स्वर था। धीर, गंभीर और शांत। वे रंगदर्शिनी (भारत भवन, भोपाल) में आये, उनसे बातचीत के अंश प्रस्तुत है-

- **आपका औपचारिक परिचय दीर्घा में मिले लीफलेट से मिल गया**

अब उत्सुकता यह है कि आपका इस यात्रा में चलने का मन कैसे बन गया?

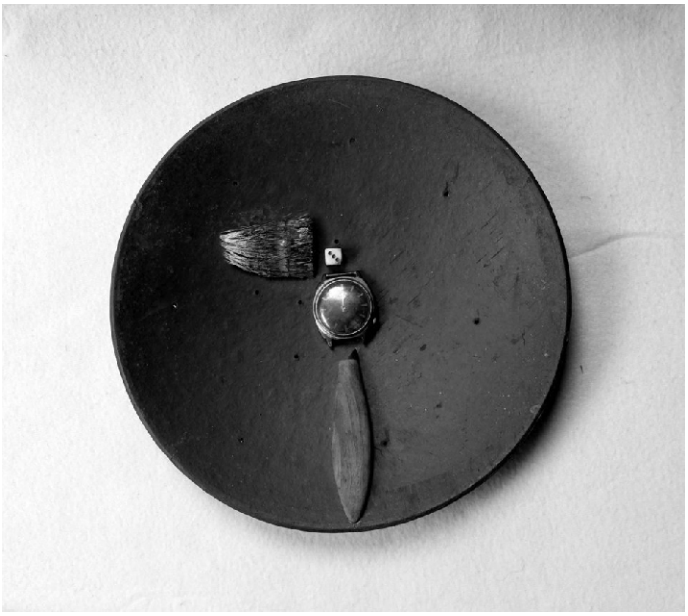

– हमारे यहाँ पिताजी को बाबा बोलते हैं और माँ को आई। बाबा पेंटर थे, रंगों को देखता था तो वे खिलंदड़े लगते थे, उनके साथ खेलने में मजा आता था। खेलना क्या? रंगों को बिखेरना। उनके चित्रों पर रंग छिटक कर चित्रों को बिगाड़ना एक खेल जैसे बन गया था। मजा आता था पर ऐसा भी लगता था कि बाबा के जैसा कुछ कर रहा हूँ। शायद यह बच्चों का किसी चीज को जानने का खास तरीका ही होता है– बिखेरो और जमाओ।

आई या दोस्तों के साथ नदी पर जाते थे तो सारे बच्चों के साथ मेरा भी शौक था अलग–अलग आकार और रंग के पत्थर ढूँढ़ना। उनमें गणेश आदि भगवानों के साथ जानवरों की आकृतियों वाले पत्थर खास आकर्षण थे।

• इस बाल सुलभ मन ने इस दिशा में गति किस प्रकार पकड़ी?

– छोटी क्लास में ही बँक मारकर चित्र बनाने की लत लग गयी, यह चोरी दादाजी (आजोबा) ने पकड़ ली। दादाजी ने पकड़कर ड्राईंग वाले गुरुजी के हवाले कर दिया।

फिर एक स्टेडीनेस सी आ गयी। समय दौड़ता गया। नागपुर से फाईन आर्ट में बी.ए. हो गया। औरंगाबाद से पोस्ट ग्रेजुएशन भी निपट गया।

हमारे यहाँ पिताजी को बाबा बोलते हैं और माँ को आई। बाबा पेंटर थे, रंगों को देखता था तो वे खिलंदड़े लगते थे, उनके साथ खेलने में मजा आता था। खेलना क्या? रंगों को बिखेरना। उनके चित्रों पर रंग छिटक कर चित्रों को बिगाड़ना एक खेल जैसे बन गया था।

• बचपन में नदी किनारे पत्थरों में आकार खोजने वाला पड़ा बीज पौधा कैसे बन गया?

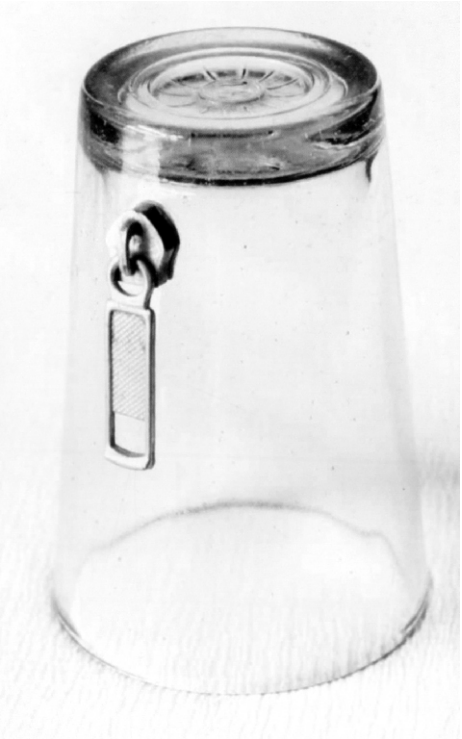

– रंगों के साथ पत्थरों के आकार से भी तो चुहलबाजी की थी पर पता नहीं लगा रंग और आकार में मेरी दिलचस्पी कब संजीदगी में बदल गयी। मैं रंगों के साथ संगतराशी तो शुरू से ही लगातार करता रहा पर औरंगाबाद में पोस्ट ग्रेजुएशन, पार्ट–1 के दौरान सामयिक मुद्दों पर स्टेट लेवल के आयोजन में मेरे भेजे गए स्कल्पचर्स पुरस्कृत हुए तो मैं

फीलिंग, इमेजिनेशन और एक्ज़िक्युशन को भावनात्मक स्तर पर समझाने लगा। मेरे मन में क्यों तो यह बात घर कर गयी कि पेंटिंग और स्कल्पचरिंग डिफरेंट नहीं है। दोनों में मटेरियल की बाउन्डिंग को एक्सपरटाईज से जोड़ सकते हैं।

उत्साहित हुआ।

मेरी जानकारियाँ भी बढ़ती गयी। पेंटिंग के बेसिक्स से लेकर रियलिस्टिक फॉर्म तक की समझ बनती गयी, बढ़ती गयी। मैं दसवी, के बाद जे जे स्कूल ऑफ़ आर्ट्स मुम्बई में एडमिशन के लिए गया था तब पहली बार पता लगा कि मॉडल सामने बिठाकर भी स्कल्पचर्स आकार पाते हैं। लौटकर गाँव में मॉडल के साथ अभ्यास किया धुन ऐसी लगी कि हज्जाम की दूकान में आईने के सामने बैठकर खुद का स्कल्पचर बना डाला।

• **लगता है, इतने अभ्यास के बाद स्कल्पचर और पेंटिंग की आपकी समझ और कुशलता पर आपका अधिकार हो गया?**

– (हँसी) ये सवाल? (फिर हँसी) देखिये, 2005 में 'कांसेप्ट और आईडिया' से मैं परिचित हुआ। फीलिंग, इमेजिनेशन और एक्ज़िक्युशन को भावनात्मक स्तर पर समझाने लगा। मेरे मन में क्यों तो यह बात घर कर गयी कि पेंटिंग और स्कल्पचरिंग डिफरेंट नहीं है। दोनों में मटेरियल की बाउन्डिंग को एक्सपरटाईज से जोड़ सकते हैं। दरअसल यह इच्छा की प्रतिलिपि का मामला है, ये ही एक्ज़िक्युशन भी है।

मेरे मन में दिलीप जी का बहुत बड़ा स्थान है। (भावुक लगते हैं, क्षणांश के लिए कहीं खो भी जाते हैं।) उस वक्त दिलीप जी ने रियाज़ अकादमी के माध्यम से स्कूल में मेरे ऑब्जेक्ट्स की प्रदर्शिनी करवाई। वहां बच्चों की प्रतिक्रियाएँ मिली, यह परिवर्तन का बिंदु था।

काम के तरीके में एक फर्क पड़ा। इस फर्क ने मुझे समझाया कि कन्सन्ट्रेशन क्या होता है और मेडिटेशन क्या होता है? कन्सन्ट्रेशन मतलब एकाग्रता, इसी में यदि हर पल जागृति भी है तो वह ध्यानस्थ होना है...(थोड़ा रुककर) जागरण ही मेडिटेशन है।

• **फिर तो आपके काम के कई रहस्य आपके सामने उजागर हुए होंगे, सिद्धांत और व्यवहार, फॉर्म और कंटेंट्स की कशमकश को किस तरह आपने महसूस किया?**

– असल में जानकारी ना होना भी रहस्य क्रियेट कर देता है। पेंटिंग या स्कल्पचर करोड़ों के कैसे हो जाते हैं....यह समझ

पाया....खैर। लोग कलाकृति से मिलते हैं, नाम से नहीं। कहते हैं, डॉ. हरिवंश राय बच्चन साहब ओशो से जब मिले तो बच्चन जी से उन्होंने कहा ''इस कविता कर्म को 'मधुशाला' नाम दिए जाने से मंतव्यों की पहुंच सिमित हो गयी....''। यह बात लगभग हर कृति कर्म में लागू होती है।

- **स्कल्पचर और पेंटिंग क्रियेट करने की क्या समान मनोदशा होती है ?**

– आँ....। एक्चुअली इन दोनों फॉर्म्स में ''सिमिट्री'' का बहुत महत्व है। सिमिट्री डिजाइन का पार्ट होता है। यह कांसेप्ट टूल्स द्वारा जब साक्षात उतारने का काम मेरे हाथों से शुरू हुआ तो लगा कि यह 'बेलेंस' की एक्सरसाईज है और बेलेंस मानसिक शान्ति का परिणाम होता है।

- **थोड़ा एक्सप्लेन..... ?**

– यह बेलेंस ऑब्जेक्ट और व्यक्ति दोनों से जुड़ा होता है। साईकल चलाने में शुरू में मदद ली जाती है, पर बेलेंस सीख जाने पर साईकल चलने लगती है। साईकल जो खुद तो खड़ी भी नहीं हो सकती पर हम उसे आराम से चलता हुआ देखते हैं। यहाँ तक कि एक पहिये वाली भी, यही बेलेंस की बात है। यह कुछ ''आऊट ऑफ ग्रामर'' वाली बात है। अभ्यास की भी बात है। स्कल्पचर में रिदम होती है। यह शिल्पकार के दिमाग की वह टोन है जो मूर्ती में लयात्मकता के असर तक देखने वाले को पहुँचाती है। (जोहन वोल्फगेंग वोन गोथे का कथन मुझे याद आ गया ''I call architecture frozen music'') यह रिदम शिल्प में उतर सके इसके लिए बेलेंसिंग के साथ आवश्यक मेडिटेशन के अतिरिक्त हिम्मत की भी जरूरत पड़ती है। सितार वादन में कभी सितार का एकाध तार अचानक टूट जाए तो वह बचे तारों के साथ वांछित सुरीलेपन को कायम रखता है। यहाँ हिम्मत श्रोताओं के लिए जुटाने वाली बात

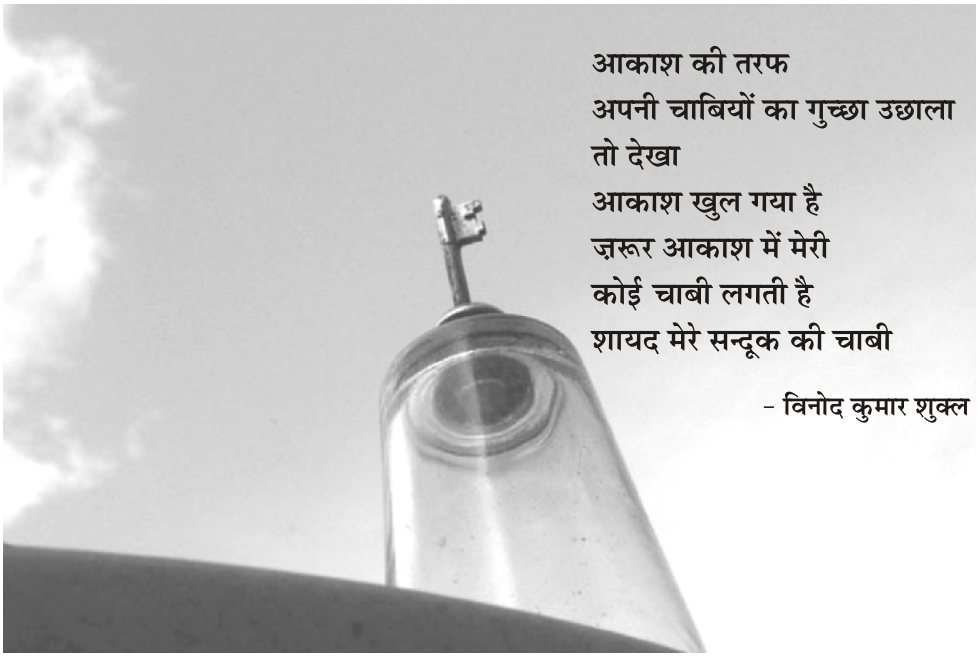

नहीं है। यहां राग विशेष के गरिमामय सुरीलेपन को संकट से बचाने की बात है। कला पोलाईटनेस के साथ करेज की बात है, विनम्रता के संग साहस की बात है।

- **आपका यह काम एकदम अनूठा है, वेस्ट मटेरियल लेकर टूटी फूटी चीजें लेकर उन्हें जोड़कर बिलकुल नया अस्तित्व नयी जिन्दगी देना, यह आईडिया कैसे क्लिक हुआ ?**

– यह काम मुझसे अचानक शुरू हुआ, कोई प्लानिंग या प्लानिंग जैसा मन में आया ही नहीं। एक दिन मैं बेकार बैठा था, करने के लिए कुछ नहीं, खाली।.....और काम शुरू हो गया....बस।

किसी टूटे हुए कप को माकूल जगह पर रखिये, चिड़िया आकर जब उसमें पानी पिए तो देखिये कप का बदला हुआ आकार। मैं ऐसी सोसायटी चाहता हूँ जिसमें भेदभाव डिस्क्रीमिनिशन ना हो। बस।

- **मूर्ति कला की परम्परागत कच्ची सामग्री और टूल्स का उपयोग आपकी इस मौलिक विधा में कहीं दिखाई नहीं देता, ''अर्थपूर्ण आकार लेकर फिर उन आकारों को स्थायी तौर पर मिलाकर उनसे गुणात्मक रूप से भिन्न नवीन अर्थपूर्ण आकार की रचना कला संसार में नया अनुभव है'', क्या कहेंगे ?**

– चीजे टूटकर अंगभंग हो कर भी अपनी अर्थवत्ता (मीनिन्गफुलनेस) नहीं खोती। मैं लगभग तीन सालों से इन्हें जोड़ रहा हूँ, और खुद भी इनसे जुड़ रहा हूँ। यह कला है, और मेरे लिए मेडिटेशन है। ये चीजें जुड़कर नया आकार पाती हैं, इस नए आकार में मैं भी मौजूद रहता है। मैं शिद्दत से महसूस करता हूँ कि उनकी पुरानी जिम्मेदारियों से मैं उन्हें मुक्त करता हूँ तभी वे ब्रह्माण्ड में मिलकर खुद को खोलते हैं। मैं अपनी इस क्रियात्मकता को प्रामाणिक प्रयास मानता हूँ। ये शिल्प मेरी पोएट्री के रूपक (मेटाफॅर) हैं।

- **''कला समय'' के सामने अपने किस चेप्टर को खोलना पसंद करेंगे, जिस के पन्ने पलटकर लोग आगे निकल जाते हैं ?**

– मैं जिस बात पर जोर देता हूँ, जो मुझे पसंद भी नहीं है, जैसे चीजों की बेदखली, उनसे छूआछूत। इस बेदखली और छूआछूत को ढोते हुए वे लाचार चीजें दीवार पर अपनी पृथकता को टंगे हुए पाती हैं। या फिर किसी आले, कोने में अपनी बेबसी को ठूंसे हुए पाती है, यह सहन नहीं होता। किसी टूटे हुए कप को माकूल जगह पर रखिये, चिड़िया आकर जब उसमें पानी पिए तो देखिये कप का बदला हुआ आकार। मैं ऐसी सोसायटी चाहता हूँ जिसमें भेदभाव डिस्क्रीमिनिशन ना हो। बस।

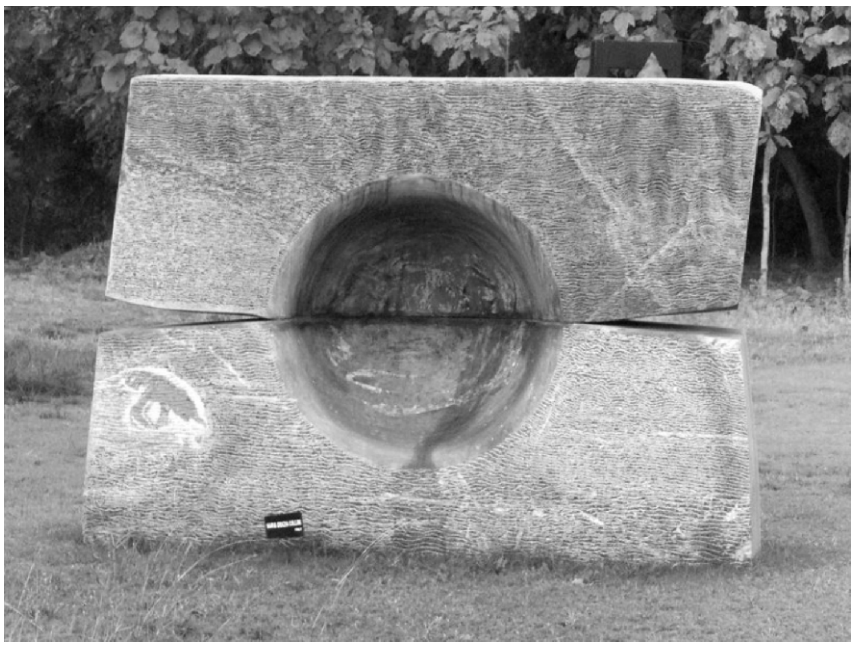

मैं और श्रीवास जी आपका अंत:मन से आभार प्रकट करते हैं और आपको निमंत्रण देते हैं कि अपनी संवेदनाएँ, अनुभव तथा सदेच्छायें ''कला समय'' के माध्यम से सब से बाँटते रहें। धन्यवाद।

मोहन शिंगणे, मो.-098931 91726
Email - mohanshingane@gmail.com

- ललित शर्मा

भारतीय नृत्य संस्कृति के महान् कला साधक पं. उदयशंकर, जिन्होंने बाल्यावस्था से मृत्युपरान्त अपनी नृत्यकला से संसार के कोने-कोने में भारतीय संस्कृति को गूंजा दिया था तथा जिनकी नृत्य साधना आज भी विश्व के नृत्य इतिहास में बेजोड़ है। नृत्यकार पं. उदयशंकर वास्तव में एक ऐसे चुम्बकीय व्यक्तित्व के धनी थे कि जो भी उनके सम्पर्क में आया उसमें भारतीय होने के गर्व के साथ-साथ कला का स्फुरण भी हुआ।

पं. उदयशंकर का नृत्य संसार

17 फरवरी 1940 को झीलों की नगरी उदयपुर के प्रसिद्ध राजमहल स्थित शाही दरबार हाल में दर्शक भव्य रंगमंच की ओर टकटकी लगाये बैठे थे। समय था संध्या का। धीरे-धीरे रंगमंच से पर्दा उठा और संगीत स्वर लहराया तो भारतीय संस्कृति की सजी संवरी पोशाक में एक कालेकेशी गौरवर्ण देवरूपी पुरूष ने मंच से सबको साष्टांगिक प्रणाम किया, तब उसे देखते ही पूरा दरबार हाल देशी-विदेशी नृत्य प्रेमी दर्शकों की करतल ध्वनि से गूंज उठा। संगीत का स्वर धीरे-धीरे मध्यम गति से लहराया और फिर वह देव रूपी पुरूष नृत्य की लहराती ताल पर थिरकने लगा। उसके शिव तांडव, इन्द्र और कार्तिकेय एकल नृत्य की गति के साथ ही नृत्य मिश्रित ध्वनि भी बिखरने लगी तो चारो और शांति छा गई। शाही मंच की भव्यता, प्राचीन भारतीय संस्कृति-संगीत की मुखरता और उस नृत्य साधक की नृत्य प्रवीणता के मिश्रण में दर्शक उसके स्वप्निल-सम्मोहक नृत्य संसार में स्वयं को भूल बैठे और ठीक दो घण्टे बाद नृत्य उपरान्त फिर बजी देर तक तालियाँ।

ये नर्तक थे- भारतीय नृत्य संस्कृति के महान् कला साधक पं. उदयशंकर, जिन्होंने बाल्यावस्था से मृत्युपरान्त अपनी नृत्यकला से संसार के कोने-कोने में भारतीय संस्कृति को गूंजा दिया था तथा जिनकी नृत्य साधना आज भी विश्व के नृत्य इतिहास में बेजोड़ है। नृत्यकार पं. उदयशंकर वास्तव में एक ऐसे चुम्बकीय व्यक्तित्व के धनी थे कि जो भी उनके सम्पर्क में आया उसमें भारतीय होने के गर्व के साथ-साथ कला का स्फुरण भी हुआ। उनके नृत्य संसार की व्यापकता आज भी विश्व भर में सम्मान के साथ स्मृत की जाती है।

बचपन से ही पं. उदयशंकर को संगीत व चित्रकारी से बेहद लगाव था। कलाप्रिय माँ हेमांगना देवी उन्हें चुपके-चुपके संगीत, चित्रकारी में दरबारी कलाविद्वों द्वारा प्रशिक्षित करवाती थी।

झालावाड़ से उदय :- पं. उदयशंकर का जन्म दिसम्बर सन् 1900 में राजपूताना (राजस्थान प्रदेश) की झीलों वाली नगरी उदयपुर की पिछोला झील के किनारे स्थित गड्या देवरा के निकट पांडुवाड़ी बस्ती में हुआ था। उनके पिता पं. श्यामाशंकर मेवाड़ रियासत के महाराणा भूपालसिंह के दरबारी थे। बचपन से ही पं. उदयशंकर को संगीत व चित्रकारी से बेहद लगाव था। कलाप्रिय माँ हेमांगना देवी उन्हें चुपके-चुपके संगीत, चित्रकारी में दरबारी कलाविद्वों द्वारा प्रशिक्षित करवाती थी। इसी समय उनके पिता को राजपुताना की अन्य रियासत झालावाड़ में दीवान के पद पर आना पड़ा और यही पर पं. उदयशंकर का बचपन व किशोरावस्था बीती जिसका मूल बीज यहीं से उन्हें संगीत की गंगा से नृत्य की महाकाश गंगा की अनन्त लहरों में पहुँचा गया। इसी बीज से उन्होंने अपने नाम को सार्थक हुए बाद में भारतीय नृत्य में एक नितान्त भव्य शैली का उदय किया जिसे ''ओरियण्टल डांस'' के नाम से जाना गया। झालावाड़ के तत्कालीन महाराजराणा भवानी सिंह बड़े ही कलाप्रिय और विद्वान नरेश थे। उन्होंने बालक उदयशंकर की अर्न्तनिहित जिज्ञासा को देख कर विशेष प्रोत्साहन दिये जो आगे चलकर उन्हें अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति दिलाने में प्रमुख रहें।

एक पुख्ता प्रमाण के अनुसार पं. शंकर की पत्नि अमला शंकर ने एक साक्षात्कार में यह बताया था कि''पं. उदयशंकर के बाल हृदय में प्रथम बार नृत्य की कला का प्रस्फुटन झालावाड़ राज्य के डग क्षेत्र के 'कंजरी' नृत्य को देख कर हुआ था और पं. शंकर ने अपने नृत्य का प्रथम प्रदर्शन अल्पायु में ही झालावाड़ की राजसी श्री भवानी नाट्यशाला में किया था। उल्लेखनीय होगा कि झालावाड़ (नगर) में स्थित यह विशाल भवानी नाट्यशाला राजराणा भवानीसिंह द्वारा निर्मित ओपेरा (पारसी) शैली की राष्ट्रप्रसिद्ध नाट्यशाला रही है और आज भी अपनी भव्यता के कारण विख्यात है।''

पं. उदयशंकर का यहीं से उदय हुआ। वे झालावाड़ के अलावा गाजीपुर और बनारस में भी रहे। जहाँ चित्रकारी में उनकी रूचि रमती रही जिसके परिणाम स्वरूप झालावाड़ महाराजराणा ने उन्हें उच्च कला शिक्षार्थ प्रशिक्षण हेतु ''जे.के. स्कूल ऑफ आर्टस्, बम्बई'' भेज दिया। वहाँ वे कला के साथ-साथ गार्न्धव विद्यालय से संगीत की शिक्षा भी ग्रहण करते रहे। झालावाड़ रियासत के खर्चे, वजीफे पर ही वे चित्रकला के अध्ययनार्थ 1920 में लन्दन की ''रॉयल अकादमी ऑफ आर्टस्'' गये। वहाँ वे पाश्चात्य-संस्कृति से

अभिभूत हो उठे तभी उनके शिक्षक विलियथ रीथे स्टाईन ने उनसे कहा– ''पहले अपने देश के गौरव और संस्कृति को पहचानो''।

चित्रकार से नृत्यकार :– शिक्षक के इस वाक्य ने पं. उदयशंकर के जीवन में अन्तर्द्वन्द आरम्भ कर दिया कि वे चित्रकला सीखे या नृत्य? क्योंकि उनके भीतर नृत्य के संस्कार भी तो विद्यमान थे। तभी उनकी दृष्टि पं. आनंद कुमार स्वामी की लिखी पुस्तक ''द डांस ऑफ शिवा'' के मुखपृष्ठ पर छपी ''नटराज शिव'' की प्रतिमा पर पड़ी तो उनका पुन: वही बाल नृत्य जाग्रत हो उठा और अन्तत: जीत हुई नृत्य कला की। इसी से प्रेरित हो बाद में उन्होंने ''शंकर–नृत्य'' की रचना की थी जो उनके महान कार्य का महान परिणाम रही। इस नृत्य में उनकी पत्नि अमला शंकर (अमला नन्दी) भी पार्वती के रूप में नृत्य करती थी।

अन्तर में रचा भारतीयत्व :– नृत्यकार के रूप में जब वे लन्दन गये तब वहाँ रूस की प्रसिद्ध बैले नर्तकी ''अन्ना पावलोवा'' से उनकी भेंट हो गयी जो नृत्य प्रदर्शन के लिये वहाँ आई थी। अन्ना ने उन्हें भारतीय संस्कृति को जानने और उसे आत्मसात करने का सुझाव दिया। इस सुझाव ने पं. शंकर के जीवन को बदल कर रख दिया कि उन्होंने विदेशी टीम बैले में नृत्य प्रशिक्षण लेते हुए भी अपने अन्तर के भारतीयत्व को सदैव जीवित रखा। जिसका परिणाम यह रहा कि जो नृत्यकला उस समय भारतीय मंदिरों और राजदरबारों तक ही सीमित थी, वह अब विश्व के मंचों पर आने लगी। पं. उदयशंकर ने अपने भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की शैली से नृत्य विद्या को नये आयाम ओर विस्तार दिये। उन्होंने अन्ना पावलोवा के साथ, राधा–कृष्ण युगल नृत्य भी किया। इन नृत्यों में तब वे इतने प्रसिद्ध हुए कि जब अमेरिका के प्रख्यात डान्स–प्रस्तुतकर्ता ह्यूरोक के निमंत्रण पर वे शेड़ो प्ले लेकर वहाँ गये तब उनसे वहाँ शेड़ों प्ले नहीं अपितु तांडव, इन्द्र और राधा–कृष्ण नृत्य को ही प्रस्तुत करने का आग्रह किया और इन नृत्यों के प्रदर्शनों से पं. उदयशंकर को विदेशी कलाविदों ने हाथों में उठा लिया।

भारतीय संस्कृति का परचम :– अन्ना पावलोवा के साथ पं. उदयशंकर ने विश्व के बड़े–बड़े और वैभवशाली देशों का भ्रमण करते हुए कुशल नृत्य का सम्मोहक प्रदर्शन किया और विश्व के रंगमंचों पर भारतीय संस्कृति का नृत्य के माध्यम से परचम लहराया। इस दौरान उन्होंने धन और प्रसिद्धि भी पाई। विशेषता उसमें यह रही (जिसे

पं. उदयशंकर उनका मानना था कि ''एक पत्ती जो वृक्ष से गिरकर हवा में लहराती हुई नीचे गिरती है–वस्तुत: उसे भी मुद्राओं द्वारा सफलता से प्रदर्शित किया जा सकता है।''

उन्होंने स्वीकार भी किया) कि बचपन में उनके देखे राजस्थानी महिलाओं के नृत्य, वीरों की तलवार, पट्टेबाजी, भीलो और कंजरों के नृत्य भविष्य में उनके काफी काम आये। उन्होंने कभी किसी नृत्य शैली को नकारा नहीं, चाहें वह कथक हो या भरतनाट्यम। उनका मानना था कि ''एक पत्ती जो वृक्ष से गिरकर हवा में लहराती हुई नीचे गिरती है-वस्तुतः उसे भी मुद्राओं द्वारा सफलता से प्रदर्शित किया जा सकता है।'' वे मानते थे कि ''शास्त्रीयता का आधार रखते हुए उसके जटिल नियमों से परे हटकर, किसी भी कथा या वस्तु को स्वतंत्र कलात्मक नृत्य द्वारा आकर्षक ढ़ंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।'' नृत्य में मौलिक एवं अभिनय प्रयोगों से पं. शंकर ने ऐसे नवीनतम् नृत्य रूप तैयार किये कि देशी-विदेशी कलाविद्ों ने उन्हें सिर आँखों पर बैठा लिया।

पं. उदयशंकर का मानना था कि ''शास्त्रीयता का आधार रखते हुए उसके जटिल नियमों से परे हटकर, किसी भी कथा या वस्तु को स्वतंत्र कलात्मक नृत्य द्वारा आकर्षक ढ़ंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।''

1930 में पं. उदयशंकर ने भारत लौटकर अपनी नृत्य मण्डली स्थापित की तथा कई स्थानों पर अपने नृत्य कार्यक्रम दिये। 1931 के मध्य वे फिर यूरोप पहुँच गये। वहाँ वे अमला नन्दी (बाद में अमलाशंकर) के निकट आये और उसे भी नृत्य की शिक्षा दी, और फिर दोनों ने विवाह कर लिया। पं. शंकर ने उस दौरान यूरोप, चीन और अमेरिका व रूस के सर्वोच्च विश्व-रंगमंचों पर अनेक नृत्य प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति की धाक जमाई। वे कभी भी बंधी बंधाई शैली पर नहीं चले। वे निरन्तर नया कुछ करने के प्रयोगधर्मी कलाकार थे। उनका मानना था कि-मैं उस परम्परा का आदर करता हूँ जो शुद्ध है, अमिश्रित, अछूती और कलाकारों के अज्ञान व सनक के कारण विकृत नहीं हुई है। परम्परागत रूढ़ियों के सिद्धान्त पुस्तक रूप में संग्रहालयों में रखे जाने चाहिये।'' इस प्रकार भारतीय ग्रामीण परिवेश और वहाँ की कला संस्कृति ने पं. उदयशंकर को जीवनरस दिया। विश्वभर में भारतीय नृत्यकला को बुलंदी पर पहुँचाने वाले उदयशंकर की आत्मा शुद्ध भारतीय रमणशीला थी। उनका मन और हृदय भारतीय ग्राम्यजन के साथ जीने, उल्लासित होने तथा नृत्यमग्न बने रहने का अखंड यथार्थदर्शी था। उनकी मनेच्छा के रूप में उनका यह कथन जैसे उनकी वसीयत ही बन गया-''मुझे ग्रामीणों की भांति रहना और उनके साथ नृत्य करना प्रिय है। मेरा हृदय गाँवों में जाना चाहता है। मैं नाव में बैठकर विस्तृत नदी को पारकर ऐसी रमणीय और अनोखी भूमि पर पग रखना

प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पं. उदयशंकर स्वयं भी नृत्य अभ्यास करवाते थे। उन्होंने पौराणिक एवं आधुनिक विषयों पर अनेक नृत्य-नाटिकाएं भी तैयार की थी जो आगे चलकर भारतीय नृत्य की विधाओं में मील का पत्थर साबित हुई।

चाहता हूँ जहाँ कृषकों के वृंद आकर मेरे चारों और इकठ्ठे हो जाये और मैं चांदनी रात में विस्तृत नीलाम्बर के नीचे नदी के तट पर ढोलक की ताल के साथ नृत्य कर सकूँ।''

पं. उदयशंकर कभी भी लकीर के फकीर नहीं बने। उनके स्वभाव में भी ऐसा नहीं था। उन्होंने पदचापों की तकनीक में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उनके पास एक आदमकद कांच रहता था, जिसके सहारे वे अपनी अंग भंगिमाओं को संवारते हुए नृत्य के विविध रूपों में आबद्ध हो जाते। इस बारे में विद्वान कपिला वात्स्यायन ने सही कहा था कि - ''पं. उदयशंकर की देन विश्व के कला वाड्मय में एक ऐसी देन है जो गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की है।''

उदयशंकर इण्डियन कल्चर :- 1940 में उन्होंने हिमालय की खूबसूरत मनोरमवादी अल्मोड़ा में ''उदयशंकर इण्डियन कल्चर'' स्कूल खोला जिसमें हर शैली के कलाविद् सम्मिलित हुए। यह एक सम्पूर्ण शिक्षा एवं कला केन्द्र था जहाँ दूर-दूर के आये विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। यहाँ नृत्य के साथ-साथ साहित्य और संगीत सीखना भी आवश्यक था। इस संस्थान में पं. सुमित्रा नंदन पंत और उस्ताद अलाउद्दीन खॉ साहित्य और संगीत के सिरमौर शिक्षक थे। पं. शंकर ने गुरुदेव रविन्द्र नाथ टैगोर से भी इस आशय की एक भेंट की थी, जिसमें गुरुदेव ने उनकी बड़े भाव विभोर होकर पीठ थपथपाई थी। इस स्कूल में नृत्य के आयामों में कथकली के गुरु शंकर नम्बूदरीपाद, भरत नाट्यम के कण्डप्पा पिल्ले, मणिपुरी के आमोबी सिंह प्रमुख थे। इनके अलावा अमला नन्दी, जौहरा, अजरा, सिमौन बार्बीयर भी यहाँ नृत्य के निष्णांत प्रशिक्षक थे।

प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पं. उदयशंकर स्वयं भी नृत्य अभ्यास करवाते थे। उन्होंने पौराणिक एवं आधुनिक विषयों पर अनेक नृत्य-नाटिकाएँ भी तैयार की थी जो आगे चलकर भारतीय नृत्य की विधाओं में मील का पत्थर साबित हुई।

कल्पना का निर्माण :- पं. उदयशंकर की फिल्म कला का प्रस्फुटन हुआ ''कल्पना'' नामक फिल्म से जिसमें पैसा कम लेकिन नाम ज्यादा हुआ। यह फिल्म भारतीय नृत्य पद्धतियों के विभिन्न समन्वित रूपों की अनुपम अभिव्यक्ति थी। उन दिनों बम्बईया फिल्मों पर मुंशी दिल, मुंशी फानी, मुंशी खंजर की उर्दू पूरी तरह हावी थी और उसी समय उनसे जा टकराये पं. उदयशंकर और उनकी टीम के सहयोगी-हिन्दी जगत के विख्यात लेखक कवि सुमित्रानंदन पंत, पं. अमृत लाल नागर, भगवती चरण वर्मा, प्रदीप, पं. नरेन्द शर्मा, गोपाल सिंह नेपाली, नीलकण्ठ तिवारी, प्यारे लाल संतोषी, राममूर्ति चतुर्वेदी, ब्रजेन्द्र गौड़, देवीलाल सामर आदि। इस फिल्म के गीत लिखे पंत जी ने और संवाद अमृतलाल नागर ने। चूंकि दोनों साहित्यकारों को बम्बईया वातावरण रास नहीं आया अत: वे सीधे पहुँचे मद्रास। पत्रकार एस.एस. वासन का जैमिनी स्टूडियो नया-नया बनकर तैयार हुआ ही था। पं. शंकर ने तब 'कल्पना' का निर्माण 1940 में यहीं किया। इस फिल्म में अभिनय की शिक्षा सुप्रसिद्ध अभिनेता पार्श्वनाथ अलटेकर ने दी।

पं. उदयशंकर कभी भी लकीर के फकीर नहीं बने। उनके स्वभाव में भी ऐसा नहीं था। उन्होंने पदचापों की तकनीक में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उनके पास एक आदमकद कांच रहता था, जिसके सहारे वे अपनी अंग भंगिमाओं को संवारते हुए नृत्य के विविध रूपों में आबद्ध हो जाते।

कल्पना के इन साहित्यकारों, कलाकारों के रोम-रोम में भारतीयता रमी थी जो फिल्म के एक-एक फ्रेम, एक-एक संवाद और गीत में अमिट छाप छोड़ गई। इस फिल्म का यह गीत 'मन की प्यास-बुझाने आई, तू है मेरा प्रेम देवता' तो आज भी नृत्य साधकों का प्रेरणा गीत है। इस फिल्म में अमृत लाल नागर का लिखा एक संवाद भी उल्लेखनीय होगा- नायिका(अमला शंकर) नायक (पं. उदयशंकर) से पूछती है- ''बम्बई नगर कैसा लगा?''

नायक उत्तर देता है-''जैसे यूरोप और अमेरिका की गन्दी नाली का नाम बम्बई हो। मुझे तो बनारस ही पसन्द है।'' इस संवाद में पश्चिम परस्तो के मुँह पर कैसा तमाचा जड़ा नागर जी ने। इसे भारत की संस्कृति के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा ही कहा जायेगा। इसी फिल्म में एक गीत पंत जी का था-''सदियों से इतिहास हमारे नाच रहे कठपुतली से।'' इस गीत में सामन्ती संस्कारों में जकड़े तथाकथित ऊँचे लोगों द्वारा पिसती जाती प्रजा की करूण-व्यथा निहित थी। दर्शकों ने इस फिल्म से अहसास किया कि हमारे देश का इतिहास जनता का नहीं सामन्तों का है। 1944 ई. में जब यह फिल्म बम्बई के 13 सिनेमागृहों में एक साथ प्रदर्शित हुई तो फिल्म समीक्षक दंग रह गये। कला की दृष्टि से यह फिल्म इतनी अधिक उच्च स्तरीय थी कि इसे रूस में आयोजित अर्न्तराष्ट्रीय फिल्म प्रतियोगिता में प्रथम स्थान मिला।

पं. उदयशंकर की फिल्म कला का प्रस्फुटन हुआ ''कल्पना'' नामक फिल्म से जिसमें पैसा कम लेकिन नाम ज्यादा हुआ। यह फिल्म भारतीय नृत्य पद्धतियों के विभिन्न समन्वित रूपों की अनुपम अभिव्यक्ति थी।

पं. उदयशंकर की अन्य रचनाएँ :- युवावस्था में ही प्रसिद्धि की चरम सीमा पर पहुँच जाने के बाद भी पं. शंकर की प्रयोगशीलता में कोई कमी नहीं आई थी। अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने प्रयोगात्मक शैली में ''शंकर-स्कोप'' का निर्माण किया जो फिल्म और मंच का मिश्रित प्रयोग था। इस फिल्म के दो शक्तिशाली माध्यमों ''क्लोज-अप'' और ''कलर'' को उन्होंने बखूबी परखा और प्रथम बार इन्हें मंच पर लाने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। ''छाया नाटक'' भी उन्हीं की देन है। इस तकनीकी के आधार पर ''रामलीला'' और ''भगवान बुद्ध'' उनकी महाकाव्यात्मक रचनाएँ थी जबकि ''मजदूर श्रम व यंत्र'' तथा ''जीवन में लय'' ये दोनों नृत्य-नाटिकाएँ उनकी सृजनशील प्रतिभा की कीर्तिमान है।

1968 में पं. उदयशंकर अमेरिका में अंतिम बार मंच पर आये वही उन्हें हृदय रोग हो गया था। अत: वे भारत आ गये। वे विदेशों में अधिक लोकप्रिय हुए लेकिन उनमें भारतीयता मरी नहीं यह तथ्य उनकी नृत्य संरचनाओं से प्रकट होता है, जिनमें राधा-कृष्ण, इन्द्र-पूजा, गंगा-पूजा, कालिया-दहन, अस्त्र-पूजा, शिव-पार्वती, कार्तिकेय, गणगौर, वर्षा-मंगल, भस्मासुर, उर्वशी आदि प्रमुख है। उनके प्रत्येक कार्यक्रमों में संगीत और वाद्य-यंत्र भारतीय ही होते थे। उन्होंने ही मुखौटों का निर्माण तथा नृत्य की वेषभूषा के निर्माण में नवीन और मौलिक देन दी। पं. उदयशंकर ने शास्त्रीय नृत्य को रीतिकालीन जड़ता से मुक्त कर स्वच्छंद आकाश और जीवन्त समाज का स्पन्दन प्रदान किया। उन्हें 1971 में ''पद्मभूषण'' तथा 1975 में ''वेशिकोत्तम'' की मानद उपाधियों से अलंकृत कर भारत सरकार द्वारा सम्मान दिया गया। वे आधी सदी तक अपने क्षेत्र में समूचे विश्व के रंगमंचों पर छाये रहे तभी तो विश्व के सिरमौर नृत्यविद् कहते है-''विश्व के नृत्य संसार में जब भी जीवन्त प्रयोगों की चर्चा लहरायेगी तो पं. उदयशंकर का नाम सबसे पहले लिया जायेगा।'' वे अपने समय के एकमात्र अकेले ऐसे कलाकार थे, जिन्होंने कम उम्र में विश्वकला पटल पर अपने देश की कला की ख्याति दर्ज करायी।

विश्व के सिरमौर नृत्यविद् कहते है-''विश्व के नृत्य संसार में जब भी जीवन्त प्रयोगों की चर्चा लहरायेगी तो पं. उदयशंकर का नाम सबसे पहले लिया जायेगा।''

पं. उदयशंकर ने भारतीय नृत्य को अनेक रचनाएँ व कलाकार दिये जिनकी सक्रियता ने भारतीय कला की प्रतिष्ठा को नये आयाम दिये। इनमें ''मेनका'' जिसने कथक पर आधारित अनेक समीक्षित रचनाएँ दी।

पं. नेहरू की ''डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'' व टैगोर की ''क्षुधितो-पाषाण'' पर आधारित नृत्य रचना तैयार करने वाले प्रभात गांगुली, भारतीय कला केन्द्र की रामलीला के निर्माता पं. नरेन्द्र शर्मा, फिशरमेन व जलपरी सी नृत्य नाटिकाएँ निर्मित करने वाले पं. सचिन शंकर, दिल्ली नाट्य बैले सेन्टर में कृष्णलीला बनाने वाले भगवान दास सहित अनेक महत्वपूर्ण नाम देवीलाल सामर, प्रहलाद दास, घनश्याम, सुंदरी भवनानी,नरेन्द्र शर्मा, मोहन सेंगल, जोहरा सेंगल, सिमकी, सचिन शंकर, देवेन्द्र शंकर, रविन्द्र शंकर व अभिनेता गुरुदत्त एवं शंतिवर्धन आदि पं. उदयशंकर की शिष्य मणि-मेघमाला में शामिल है। उनके दल में 20-25 कलाकार थे, जिनमें 8 तो वादक ही थे। इनमें करदीकर इस दल के प्रमुख वादक थे। वे उदयशंकर के नृत्यों में तबला तरंग में तेरह तेरह तबले तक बजाते थे। एक ही समय में एक पाव से एक मात्रा, दूसरे से दो, एक हाथ से तीन, दूसरे हाथ से चार तथा मुंह से पाँच मात्रा कर बताना उनके बाये हाथ का खेल था। उदयशंकर के साथ उन्होंने उनके प्रोत्साहन से नये-नये बोल-ताल भी तैयार किये। आड़ा तीन ताला, लघुनवान्की बनाये। दो में तीन मात्रा, तीन में चार, चार में पाँच और इसी प्रकार तीन में दो, चार में तीन, पाँच में चार ऐसे लय के अनेक प्रकार खोजे। पं. उदयशंकर अपने इस दल प्रमुख से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उनके न केवल भारत अपितु विदेश के मंचों पर भी एकल प्रदर्शन रखवाये, जो बड़े प्रभावी तथा प्रशंसित रहे। करंदीकर ने इन मंचों पर अकेले ही तबला, ढ़ोल, नगारा, पखावज, जलतरंग, तबला तरंग, डुग्गीतरंग जैसे वाद्यों को एक साथ बजाकर खूब वाह वाही ली।

सितम्बर 1977 में विश्व नृत्य कला के विभिन्न क्षितिजों को छूने वाला यह महिमा मंडित कला तपस्वी ब्रह्मलीन हो गया। 26 सितम्बर 1978 को भारत सरकार के संचार मंत्रालय ने इस महान नृत्यकार पर 25 पैसे का डाक टिकिट भी प्रसारित किया था। पं. शंकर का आजीवन यही प्रयास रहा कि-''कला को जड़ नहीं बनने देना चाहिये, कला-चाहे कोई भी हो वह परिश्रम के द्वारा ही अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होगी और इसी में कला और कलाकार की सर्वोच्च सफलता है।'' यह सही है कि उनके बाद फिर उन जैसा कोई अन्य कला साधक भी नहीं हुआ। परन्तु अभी तो उनकी समग्र नृत्यकला की गहन देन को भी ठीक से समझा नहीं गया है। आज पं. शंकर की नृत्यकला के मर्म को जानने वाले नहीं हैं दर्शक भी बहुत कम है। समीक्षक तो उससे भी कम है।

पं. शंकर का आजीवन यही प्रयास रहा कि-''कला को जड़ नहीं बनने देना चाहिये, कला-चाहे कोई भी हो वह परिश्रम के द्वारा ही अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होगी और इसी में कला और कलाकार की सर्वोच्च सफलता है।''

'अनहद', जैकी स्टूडियो, 15 मंगलपुरा, झालावाड़- 326001 (राज.)
मो.- 98298 96368

कला और लोक के आलोक में : रानी रूपमती

– डॉ. वर्षा नालमे

इतिहास और उसकी अवधारणाएं कभी कभी अपने ही इतिहास पात्रों के साथ न्याय नहीं कर पाती हैं। मध्ययुगीन मालवा की प्रसिद्ध राजधानी माण्डवगढ़ की रानी रूपमती भी उन्हीं में से एक है। अभी तक प्राप्त इतिहास के छिन्न-भिन्न रूप में रानी रूपमती की छवि अफगान सुल्तान बाजबहादुर की एक मात्र प्रेमिका के रूप में है, परन्तु कठोर वास्तविकता यह है कि ऐसा कुछ है ही नहीं। वास्तविकता यह है कि वे दोनों कला परम्परा के समर्पित साधक थे। उनकी उदात्त संगीत साधना और भावना में उनका आत्मीय प्रेम समाहित था। उनके पवित्र प्रेम का आधार कला थी महिला या पुरूष होना नहीं। उनके मध्य के सम्बन्ध भी संगीत साधना से बन्धे थे।

माण्डू सुल्तान बाजबहादुर ने रूपमती को बाकायदा अपनी रानी बनाने के बाद कभी भी ना तो उसका धर्म परिवर्तन किया ना ही उसने उसकी पूजा उपासना पद्धति में कोई बाधा उत्पन्न की। उसने रानी की धार्मिक मान्यताओं का आदर करते हुए सभी प्रकार की सुविधाएं जुटा दी थी तथा स्वयं ने रानी की आराध्या नर्मदा के जल की धारा को माण्डू में लाने की सफलता प्राप्त कर इतिहास में एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था। धर्म की तथाकथित मान्यताएं इसी कारण उन दोनों की सच्ची संगीत साधना में कभी बाधक नहीं बनी।

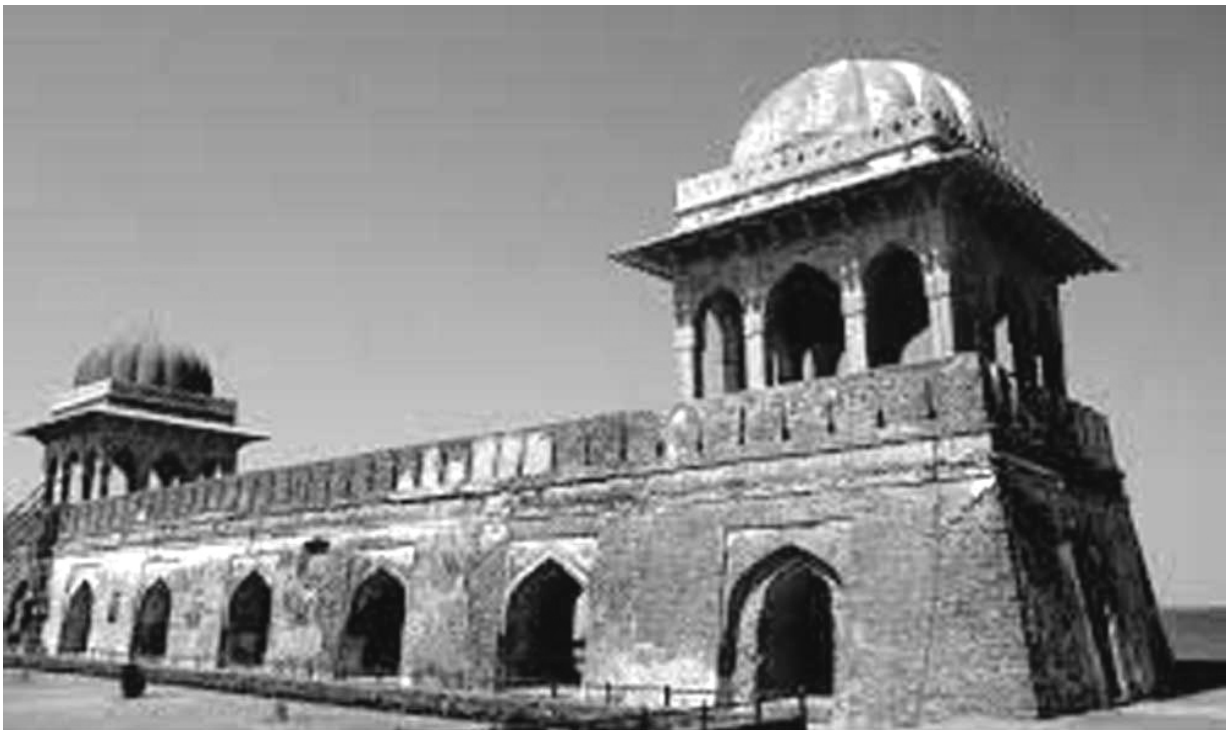

रानी रूपमती का मण्डप, माण्डवगढ़

इतिहास, कला एवं लोक संस्कृति इस तथ्य की आज भी साक्षी है कि मालवा के कारण भारतीय इतिहास की 16वीं सदी को भारतीय संगीत का स्वर्णकाल माना जाता है। इसी परम्परा में यह भी सच है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह की प्रिय रानी गूजरी के कारण ग्वालियर राज्य ध्रुपद गायकी संगीत का बड़ा केन्द्र बनकर भारत में उभरा तथा संगीत गायक तानसेन ने ग्वालियर में संगीत शिक्षा को प्राप्त किया और बैजूबावरा जैसे संगीतकार ग्वालियर आये। परन्तु इतिहास का सच यह भी है कि तानसेन और बैजूबावरा के प्रसिद्धि पाने से काफी वर्षो पूर्व ही मालवा का माण्डवदुर्ग संगीत साधना का भारत में सर्वोच्च केन्द्र बनकर ख्याती प्राप्त कर चुका था। सुल्तान बाजबहादुर तो संगीत की विधाओं का आराधक था और रूपमती भी संगीत, नृत्य, कविता में निष्णांत थी अत: ऐसी समान रूचियां ही यदि इन दोनों को एक दूसरे के समीप ले आई हो तो इसमें क्या संशय माना जा सकता है?

इस बात में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए कि रूपमती अपनी संगीत कला में प्रावीणता के कारण अपने जीवनकाल में ही जीवन्त किवदन्ती बन गई थी। उसके ऐसे कलात्मक और उदात्त गुणों के कारण उसकी चर्चा चहुं ओर प्रसारित होने लगी थी और बाजबहादुर ने उसकी कला को परखा होगा। परन्तु इतिहास ने उसके प्रारम्भिक जीवन को अन्धकार में रखा और भ्रामक सूचना दी। अकबर के मुग़लई इतिहासकारों क्रमश: निजामउद्दीन और अबुलफजल ने रूपमती को मात्र एक पतुरिया, गायिका और नर्तकी बता दिया। उनकी लिखी इसी बात ने फिर रूपमती की छवि को धूमिल कर दिया और पश्चात् के इतिहासकारों ने उसे एक बाजारू औरत के रूप में रेखांकित कर उसे चैराहे पर ला खड़ा किया। उसका यही स्वरूप पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित होता रहा और रोमांटिक रूप में प्रसारित होता गया। निमाड़, मालवा की माटी की इस बेटी के सत्य जीवन पर फिर दीर्घावधि तक किसी ने लिखने या शोध करने की कोई मानसिकता भी नहीं बनायी।

इस बात में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए कि रूपमती अपनी संगीत कला में प्रावीणता के कारण अपने जीवनकाल में ही जीवन्त किवदन्ती बन गई थी। उसके ऐसे कलात्मक और उदात्त गुणों के कारण उसकी चर्चा चहुं ओर प्रसारित होने लगी थी और बाजबहादुर ने उसकी कला को परखा होगा।

मालवा के एक प्रतिष्ठित साहित्य साधक स्व. श्याम परमार ने अपने प्रयासों और शोध साधना के बल पर सच को सामने लाने का प्रयास किया और उन्होंने बताया कि वास्तव में रूपमती निमाड़ के धरमपुरी में वास करने वाले राठौड़वंशी राजपूत जागीरदार थानसिंह राठौड़ की बेटी थी। मुगल इतिहासकारों ने इसे सारंगपुर के ब्राह्मण परिवार की पुत्री बताया परन्तु आधार प्रस्तुत नहीं किये जबकि रूपमती का जीवन उसके धरमपुरी में रहने के प्रमाण से जोड़ता है। वह बकायदा बाजबहादुर की अर्धांगनी थी और बाज ने उसे 'रानी' का पूरा सम्मान प्रदान कर उससे प्रणय किया था। तब रूपमती भी अपने जीवन के अन्तिम सांस प्राण तक अपने पति के प्रति समर्पित रही। एक सती राजपूत नारी और परम निष्ठावान पत्नि के सदृश्य उसने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया लेकिन अकबर के मुगल सेनानायक व्याभिचारी अधमखान की अंकशायिनी बनना कतई स्वीकार नहीं किया। चाहे उसे अपनी अंगूठी में जड़ी हीरे की कणी खाकर अपने प्राण त्यागने पड़े हों।

मुगल इतिहासकार अहमदउलउमरी ने भी रूपमती के बारे में यह भ्रामक सूचना प्रसारित की कि वह सारंगपुर की निवासी थी। इस बारे में उसका मानना था कि उसे मृत्यु पश्चात् सारंगपुर (तिंगसपुर) में दफनाया गया। लेखिका के सामुख्य अध्ययन के अनुसार

सारंगपुर में रूप और बाज की मृत्यु के मकबरे मुगल स्थापत्य के रूप में आज भी मौजूद है परन्तु उक्त इतिहासकार इस बारे में एक भी सबल पुरासाक्ष्य नहीं दे पाये कि रूपमती मूलरूप से सारंगपुर की ही निवासी थी? डॉ. श्याम परमार इसके विपरीत यह मानते है कि रूपमती मां नर्मदा की उपासिका थी। नर्मदा सरिता निमाड़ की प्राणरेखा रही है।

अत: वह निमाड़ क्षेत्र की निवासी थी। नर्मदा में उसकी अशेष और अटूट श्रद्धा थी। माण्डव में आकर रानी बनने के बाद भी उसकी नर्मदा के प्रति अनन्य श्रद्धा कम नहीं हुई और वह मीरा के कृष्ण प्रेम की अनुरागिनी की भांति नर्मदा स्नान और बिना नर्मदा दर्शन के अन्नग्रहण नहीं करती थी। इसीलिये बाज बहादुर ने नर्मदा की पवित्र धारा को माण्डू के रेवाकुण्ड में लाकर उस रानी की धार्मिक भावना का सम्मान किया था। इस कुण्ड के निकट ही उसने अपनी रूप के लिये 'राजेश्वर शिव' का एक महालय भी बनवाया था। बाज़ ने रूप की धार्मिक भावना को अपने अन्तरमन से समझकर उसका सम्मान करते हुए माण्डव में रूपमती महल भी बनवाया। लेखिका के सामुख्य अध्ययननुसार यह विशाल महल माण्डव के दक्षिण सिरे की सर्वोच्च ऊंचाई पर ऐसी जगह स्थित है जहां खड़े होकर निमाड़ वन प्रान्तर की प्राकृतिक शोभा का मनोहारी आनन्द उठाया जा सकता है। यही से नर्मदा आज भी एक रजत रेखा के समान दिखाई देती है। रूपमती इसी महल से सूर्योदय व ऊषाकाल में अपनी इस पवित्र आराध्या के दर्शन करती थी। चांदनी रात अथवा सांझ के समय संवेदनशील पर्यटकों और कठोर इतिहासकारों को भी इस महल और माण्डू के वीरान महलों में आज भी संगीत की लहरी के स्वर सुनाई देते है। ऐसे में दर्शक निश्चय ही अपने आपको भूतकाल में परियों के स्वप्नलोक में अवश्य पायेगा। यही इस स्थल के रौमानी सौन्दर्य की विशिष्ठता है जो आज भी महसूस की जा सकती है। यहां यह भी समझना आवश्यक होगा की रूपमती के इस महल पर जाते ही चांदनी रात में पर्यटकों इतिहासकारों, काव्य प्रेमियों को संगीत की दुनिया में नये राग की यह जनक (रूप) एक यक्ष प्रश्न करने से नहीं चूकेगी कि – ''है कोई मालवा या सात समन्दर पार का ऐसा लाल जो मेरे जीवन संगीत की साधना को उजागर कर एक नियमित पवित्र महफिल जमाकर उसकी एक धरोहर को जीवन्त रख सकें?'' आज यह बेमिसाल स्मारक बार-बार हमें एक ही संदेश देता है कि – ''आज इतिहास मानव की गलतियां जानने और सीखने का शास्त्र है- उनको दोहराने का नहीं।'' इतिहास का उद्देश्य जोड़ना और टूटने से बचाने का है, परन्तु जो इसे ओझल करता है या उसे उलटता है वह सत्य नहीं है। रूपमती का यह मण्डप (महल) इसी का प्रत्यक्ष गवाह है। यहां यह भी तथ्य उल्लेखनीय होगा कि इस बात को बहुत कम लेखक जानते होगें कि- अकबर जब सन् 1573 में माण्डव आया तब उसने मालवा प्रशासन सम्बन्धी कई शाही फरमान जारी किये थे। इनमें से एक फरमान की श्रेष्ठतम मुहर (सील) ''अकादमी ऑफ इण्डियन न्यू मिस्मेटिक्स एण्ड सिग्लियोग्राफी'' नामक पुरातत्व

रानी बनने के बाद भी उसकी नर्मदा के प्रति अनन्य श्रद्धा कम नहीं हुई और वह मीरां के कृष्ण प्रेम की अनुरागिनी की भांति नर्मदा स्नान और बिना नर्मदा दर्शन के अन्नग्रहण नहीं करती थी। इसीलिये बाज बहादुर ने नर्मदा की पवित्र धारा को माण्डू के रेवाकुण्ड में लाकर उस रानी की धार्मिक भावना का सम्मान किया था।

जर्नल के मोनो (इन्दौर) का प्रमुख भाग भी है।

विश्वसनीय सूत्रों के अनुसार – धरमपुरी धामनोद के निकट के जंगल में एक गढ़ी के अवशेषों को जानकारों ने रूपमती की गढ़ी माना था। रूप के पिता थानसिंह राजपूत यहीं के वासी थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बाजबहादुर के सुल्तान बनने से काफी पहले 14 वीं से 15 वीं शताब्दियों में माण्डव के होंशगशाह गौरी और महमूद खिलजी जैसे सुल्तानों ने गागरोन, चित्तौड़ क्षेत्र में पहुंचकर वहां के अनेक राजपूतों के परिवारों को आमंत्रित कर निमाड़ के इस क्षेत्र में बसाया था। थानसिंह के पूर्वज भी उन्हीं में से एक थे। कुछ ही समय पश्चात् ये परिवार निमाड़ी बन कर नर्मदा के उपासक बन गये। इस सरिता के ओर छोर की संस्कृति, जीवन उनके अपने बन गये। रूपमती और उसकी संगीत, गीत की साधना भी फिर इसी संस्कृति की महान देन बनी।

लोक किवदन्ती है कि संगीत साधक बाजबहादुर इसी जंगल में शिकार के निमित्त आया था और संयोग से गीत गाती रूपमती से उसकी भेंट हो गयी। वह संगीत का पारखी था अत: रूप की संगीत साधना पर वह समर्पित हो गया। उसने थानसिंह के समक्ष रूप को रानी बनाने का प्रस्ताव रखा और रूप के धर्म, उपासना विषयक हिन्दू नियमों को स्वीकार कर उससे बाकायदा प्रणय किया। रूप के कारण माण्डवगढ़ बड़ा कला तीर्थ बना। रूपमती में बाज ने पाया कि वह संगीत की ही नहीं वरन् गायिकी, वादन, कविता सृजन में तो सिद्धहस्त है ही वह साहस, नीति में भी अद्वितीय और कुशल राजनितिज्ञ है। रानी बनकर वह बाज के साथ घोड़े पर सवार होकर शिकार में भी जाती थी और बाज के सैनिकों के अभियानों में भी वह साथ देती थी इसलिए बाज उसका बड़ा सम्मान करता था।

समयानुसार अनुकूल वातावरण और बाज के प्रोत्साहन के कारण रूपमती ने नवीन राग रागिनियों का आविष्कार कर दिखाया। उसने ख्याल गायिकी की खोजकर उसे 'बाजखानी ख्याल' नाम दिया और इसी कारण माण्डू 'ख्याल गायकी' का भारत में प्रमुख केन्द्र बनकर ऊभरा। रूप के कारण फिर 16वीं सदी में मालवा को संगीत के क्षेत्र में ख्याल प्रस्तुत करने का बेमिसाल श्रेय मिला जो रूप की सर्वोच्च संगीत साधना का ऐसा प्रमाण रहा जिसके समक्ष माण्डू की धरोहरों की बयार ने प्रणाम कर लिये थे। ख्याल गायकी के अतिरिक्त रूप ने 'भूपकल्याणी राग' का आविष्कार भी किया था। वह संगीत और नृत्य की सभी शैलियों में निष्णांत थी। यदि विचार किया जाये तो जिस प्रकार तानेसन का 'प्रियगायन ध्रुपद' था उसी प्रकार रूपमती का प्रिय गायन 'ख्याल' था। बाजखानी ख्याल की रचना रूपमती ने इसी के अन्तर्गत की थी। प्रख्यात संगीतज्ञ मल्लिकार्जुन मंसूर इसी ख्याल गायकी के भारत में सर्वोच्च प्रतिनिधि रहे है। रूपमती की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह जिन भी कविताओं का सृजन करती थी उन्हें संगीत के रूप में तुरन्त ढ़ाल लेती थी और अभिनय तथा नृत्य के द्वारा उन्हें जीवन्त कर देती थी। यह त्रिवेणी ही उसकी संगीत साधना का सर्वोच्च सोपान थी।

रूपमती ने नवीन राग रागिनियों का आविष्कार कर दिखाया। उसने ख्याल गायिकी की खोजकर उसे 'बाजखानी ख्याल' नाम दिया और इसी कारण माण्डू 'ख्याल गायकी' का भारत में प्रमुख केन्द्र बनकर ऊभरा।

यदि लोक संस्कृति, कला और साहित्य के आलोक में रानी रूपमती के अवदान का अनुशीलन किया जाये तो वह हिन्दी भारती के अलावा मालवी और निमाड़ी तथा उससे भी आगे बढ़कर राजस्थानी बोली की जानकार थी। उसने इन भाषाओं/बोलियों में कई काव्य रचे। इतना ही नहीं उसने दोहों और सवैयों की भी सुन्दर रचना की जिनमें निमाड़, मालवा का ही नहीं अपितु उससे भी आगे बढ़कर हाड़ौती और रणथम्भौर का भी भौगोलिक रूप से वर्णन हुआ है। रूपमती ने भावधारा के अनुरूप श्रृंगार परक काव्य का सृजन किया। उसमें उत्कृष्ट भावानुकूलता और संगीतात्मकता के दर्शन होते है। उसके एक दोहे से अंचल (क्षेत्र) के भूगोल का स्पष्ट विवरण मिलता है –

चित्त चन्देरी, मन मालवा, हिया हाड़ौती माय।
पलंग बिछाऊं रणतभंवर मैं, पोढ़ू मांडव आय।।

लुअर्ड नामक ब्रिटिश साहित्यकार ने 'Dhar and

Mandu' (धार एण्ड माण्डू) नामक अपनी लघुकृति में वाचिक पद का उल्लेख किया जिसमें यह दर्शाया गया है कि – रूपमती स्वयं को अपने पति बाजबहादुर पर न्यौछावर करने को उद्यत है –

अरू तो धन जोड़ता है री
मेरो तो धन प्यार की प्रीत पूंजी
अनेक जतन कर राखो मन में
जो परतीत थारी देखूजी
तिरिया की ना लागे दृष्टि
अपने कर राखूंगी कुंजी
दिन दिन बढ़त सवायो
दूर ही घटत एको गुंजी
बाजबहादुर को स्नेह ऊपर
निवछावर करूंगी जी।.....अरू तो धन

बाज बहादुर के प्रति उसका प्रेम अति पवित्र और उत्कृष्ट था। अपने इसी आत्मिक और मर्यादित प्रेम की अभिव्यक्ति उसने अपनी जिस कविता में समादृत की वह अद्वितीय है। वह लिखती है कि- बाज! आपको किसने बहला दिया है? आप कहां हैं? सांझ हो गयी है और दिन अस्त होने को है। मैं आकुल होकर प्रतीक्षारत हूं। सारा कोलाहल माण्डू में थम सा गया है और अर्थहीन सा प्रतीत होता है। प्रस्तुत है इस विरह व्यथा की एक बानगी –

त्हने किन बैरिन बिलमायों
ऊभी थ्हारै कारन
भड़-भड़ जोऊ बाट
सांझ पड़ी दिन आ थम्यो
उठ ग्यो सारो हाट
रूपमती को बाजबहादुर
रसियो सिगरो ठाट

रूपमती का उदात्त प्रेम अपने बाज के प्रति इतना पवित्र और आत्मीय था कि वह एक पल भी बगैर उसके नहीं रह सकती थी। अपनी इसी भावाभिव्यक्ति को स्पष्ट रूप से स्वीकारते हुए वह लिखती है कि –

बिन पिया पापी जिया
चाहत है सुखराज
रूपमती दुखिया भई
बिन बहादुर बाज

उक्त रचनाओं से यह भी ऐतिहासिक रूप से स्पष्ट होता है कि बाजबहादुर का कर्मक्षेत्र चन्देरी, गागरोन से लेकर स्थापन स्थल शुजालपुर, शाजापुर होते हुए मालवा से माण्डवगढ़ तक रहा तो रूपमती के काव्य चिंतन का विराट क्षेत्र निमाड़-मालवा से लेकर हाड़ौती और उमठवाड़ होते हुए रणथम्भौर तक रहा था।

कुल मिलाकर देखा जाये तो रानी रूपमती मध्ययुगीन इतिहास एवं लोकपरम्परा और साहित्य की सर्वोत्तम समन्वयी बिन्दू थी। परन्तु दुर्भाग्य से उसके उत्कृष्ट साधनागत अवदान व सच्चाई तथा उसकी कलात्मक उपलब्धियों को ढ़का गया और बार-बार उसे मुग़ल लेखकों ने नृत्यांगना और पतुरिया के रूप में उच्चारित किया। मुस्लिम विद्वेष की भावना ने उसके चरित्र को लांछित किया। परन्तु इस पर भी उसके व्यक्तित्व के पवित्र आकर्षण ने अनेक विद्वान चित्रकारों और साहित्यकारों को अनुप्राणित किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूपमती की साधना संगीत की ख्याति उसके जीवनकाल में ही निमाड़ और माण्डवगढ़ को लांघकर समूचे मध्ययुगीन भारत में प्रसारित हो गई थी। सनवाल, गोबरधन और चेतरमन जैसे चित्रकारों ने उसके व्यक्तित्व पर विभिन्न चित्र बनाये। रूपमती के इसी रूप ने राजस्थानी से लेकर कश्मीर, पंजाब के चित्रकारों को खानदेश, दक्षिण के चित्रकारों के साथ प्रेरणा प्रदान की।

ख्यात कलाविद श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के द्वारा रूपमती और बाज़बहादुर पर केन्द्रित मध्यकालीन लघुचित्र शैलियों में बनाए गए लघुचित्रों का अध्ययन किया गया है। उनके अनुसार शीरी-फरहाद, लैला-मजनू, शशि-पुन्नु तथा हीर-रांझा की अमर प्रेम गाथाओं के समान ही रूपमती और बाज़बहादुर की प्रेम कहानी इतिहास के पन्नों में सदैव के लिए दर्ज हो गई है। इस प्रेम कहानी ने कलाकारों को गहरे छुआ और उनकी तूलिकाओं ने रंगों और रेखाओं का मिलन कराकर इस प्रेम कहानी को मूर्त रूप देते हुए कला इतिहास में अमर कर दिया। भारतवर्ष के विभिन्न संग्रहालयों सहित हॉर्वर्ड, नैशनल गैलरी ऑफ ऑस्ट्रेलिया, लॉस एंजिलिस, काउंटी म्यूज़ियम अमेरिका, मेट्रोपोलिटिन म्यूज़ियम न्यूयॉर्क अमेरिका सहित येल युनिवर्सिटी के संग्रहों में मध्यकाल की

विभिन्न राजस्थानी तथा पहाड़ी, मुग़ल, दकनी व मालवा शैली में बने रूपमती तथा बाज़बहादुर के अंकन संग्रहीत हैं। इस गाथा पर केन्द्रित चित्र मुर्शिदाबाद तथा फर्रुखाबाद जैसी क़लमों में भी बनाए गए हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि क्रिस्टीज़ और बोनहम्स ने विभिन्न शैलियों की इस गाथा पर केन्द्रित अंकनों का समय-समय पर विक्रय भी किया। ऐसे चित्र विभिन्न कलाप्रेमियों ने क्रय किए हैं तथा पूरे विश्वभर में इस गाथा पर केन्द्रित अंकन बिखरे हुए हैं जो विभिन्न निजी संग्रहों में हैं। इन अंकनों में प्राय: सभी में रूपमती को व बाज़बहादुर को घोड़ों पर सवार चित्रित किया गया है। अनेक अंकनों में वे साथ-साथ विशेष रूप से हरिणों का शिक़ार करते हुए चित्रित किए गए हैं। उनके द्वारा पक्षियों के शिक़ार करने के भी दृश्य हैं। एक अंकन ऐसा भी है जिसमें इन दोनों को वन में घोड़ों पर सवार होकर जाते हुए चित्रित किया गया है तथा जिस जंगल से वे निकल रहे हैं उस स्थान पर एक तालाब में महिलाएं स्नानरत चित्रित की गई हैं। अनेक अंकन ऐसे हैं जिसमें दोनों के हाथों में बाज़ को बैठे चित्रित किया गया है। इन अंकनों में भले बाज़बहादुर और रूपमती को सैनिक वेशभूषा में चित्रित किया गया हो लेकिन उनकी देह की रागात्मकता को चितेरे ने बखूबी चित्रित किया है। इन लघुचित्रों को देखते समय यह सहज आभास हो जाता है कि रूपमती और बाज़बहादुर कला को समर्पित व्यक्तित्व रहे होंगे। इन अंकनों में स्वाभाविक रंग विशेष रूप से हरे, हल्के लाल व पीले रंगों का उपयोग किया गया है।

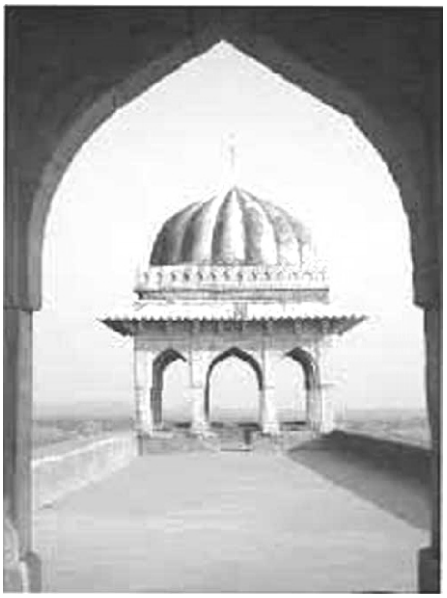

यह प्रेम गाथा इतनी लोकप्रिय हुई कि उसने एक ओर जहां कांगड़ा, नूरपुर व मानकोट सहित पहाड़ के छोटे-छोटे ठिकाणों की शैलियों में अपने आप को अभिव्यक्त किया वहीं दूसरी ओर पहाड़ की लोकशैलियों में भी उसने अपनी पैठ बनाई। राजस्थान की विभिन्न शैलियों में विशेष रूप से जयपुर, मारवाड़ तथा मेवाड़ की क़लमों में इस गाथा को रुपायित किया गया वहीं दूसरी ओर इसके रेखांकन राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों में भी किए गए।

चितेरों ने इनके आसपास के प्राकृतिक परिवेश को पूरे सौन्दर्य के साथ चित्रित किया है तथा प्रकृति के हर उपादान को बारीक़ी के साथ उकेरा है। हरे-भरे वृक्षों के बीच में कुलांचे भरते हरिण और पूरी गति के साथ घोड़ों पर सवार होकर उनका पीछा करता यह युगल स्पष्ट रूप से यह आभास कराता है कि स्थिर चित्र में भी कितनी गतिशीलता समा सकती है और सौन्दर्य मौन होते हुए भी कितना मुखर हो सकता है।

इसी कारण प्रतिवर्ष माण्डव दुर्ग में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा माण्डू उत्सव का भी आयोजन किया जाता है। माण्डवगढ़ रूपमती का संगीत साधना स्थल रहा है और सारंगपुर उसका मृत्यु स्थल। इन दोनों स्थलों का अवलोकन आज भी लेखकों और पर्यटकों को एक भावुक संवेदनशील स्पन्दन और पवित्र स्पर्श प्रदान करता है। जहां मूक पाषाण तो बोलते है। खण्डहरों की दिवारों से रंग और रेखायें व निर्माण भी बोलते है तथा रूप की संगीत साधना भी गूंजती है पर भाव शब्दों का स्थान इतिहासकार अथवा साहित्यकार की कलम समेट नहीं पाती। कहा भी गया है कि - साधना करते-करते जब साधक अतिदृढ़ हो जाता है तब साधनागत व्यक्तित्व के समक्ष इतिहास की धरोहरें भी प्रणाम करती है। रूपमती रानी की संगीत साधना इसी का सर्वोच्च प्रमाण है जिसके कारण माण्डव से लेकर सारंगपुर तक के खण्डहर उसके नाम के समक्ष प्रणाम करते हैं। प्रस्तुत लेख यद्यपि अल्प जानकारी लिये ही माना जाना चाहिए क्योंकि अभी और यथोलब्धि इस कार्य में होना शेष है। मालवा स्थित धार में एक शोध संस्थान इस कार्य में सतत् शोधरत है।

आलेख से सम्बन्धित रंगीन चित्र अंतिम आवरण पृष्ठ पर देखें

प्राचार्या : सेन्ट्रल एकेडमी, टी.टी. कॉलेज, प्रगति नगर, अजमेर-305001 (राज.)
मो. 099292 69650

- डॉ. नर्मदाप्रसाद सिसोदिया

ओ! ये है 'आदमगढ़'!

नर्मदा के किनारे ही बिरमने की उमग तो 'गदबद-गदबद' डुरयाती रहती है तो फिर पूरब में महमह करती हर्बल पार्क की सुहानी सुवास। पश्चिम में 'गद्‌गद्‌' करती है गुरुकुल की सुभाषित। और यदि दक्षिण में जाकर पहाड़ियों की गुफाओं में धुँधले से चित्र और इमारती पत्थरों की बंद पड़ी खदानें देखना हो तो लरकती आँखें 'लदबद' हो जाती है। हाँ, नर्मदा की लहरों ने ही तो उन लाल पत्थरों पर रंगरेखाओं को शिल्पायित किया है। तो वे लोक कथाओं, लोक विश्वास, लोकरीति, लोकाचार लोककर्मकाण्ड का पुर्नपाठ कर रहे हैं। और वे अपने भूगोल को उलटपुलटकर देख रहे हैं कह रहे हैं-'कभी नर्मदा घाटी में सागर लहराता था।' तब से ही धरातल की तासीर में परिवर्तन हुए हैं। तो विंध्याचल एवं सतपुड़ा से छिटके हुए हैं, नर्मदा के दक्षिण तट पर सिवनी मालवा में चौतलाय धमासा की पहाड़िया और होशंगाबाद में आदमगढ़ की पहाड़िया।

तो इसे पहाड़िया इसलिये कहते आ रहे हैं कि यहाँ से कुछ ही वर्ष पूर्व तक इमारती पत्थरों की खुदाई की जाती रही है। प्रमाण स्वरूप माचिस की डिबिया सृदश मजदूरों के आवास अभी भी बने हुए हैं। तो आसपास के गाँवों के घरों में दाँसे पर, कुआँ के पाट पर, दरवाजे के लदाब पर, आज भी यहाँ के पत्थर लगे हुए हैं और वे तो नींव के पत्थर हैं। चाँदे मुनारे के पत्थर तो बचे नहीं। तो सीमांकन करते-करते प्राणवान हो जाते हैं संवाद करते हैं- ''पहाड़िया से हमारा राम-राम कह देना।'' और तो और ऊँखल और घट्‌टी उसाँसें भरते हैं-''काफ पर उरेही यक्षणी से कह देना इधर गाँव ग्वाड़ी में लोक राग की झिर झुरिया गई है। आँगन गुमसुम, गुमसुम हैं 'जी' की उमग हिरा गई। जन्मभूमि को हमारा बार-बार प्रणाम कह देना।'' तो यही गुलाबी पत्थरों की पहाड़िया है, होशेगाबाद से 2 कि.मी. दक्षिण में इटारसी रोड पर। और यही है आदमगढ़। इसे बाबा आदम के जमाने का आवास स्थल कहा जाता है। तो इसी पहाड़िया की गुफाओं में हैं कुछ शैलाश्रय।

द्वारे से झुरमुटों के बीच सकरी पत्थरों की पक्की पगडंडीनुमा सड़क जाती है, शैलाश्रयों की ओर। ठिठककर ही निगाह भर देख रहा हूँ। 'जी' में आया तो सूचनापट को पढ़ रहा हूँ। फिर विचारों की निमग्नता में पहाड़िया की ड्योढ़ी पर बैठ गया हूँ। तो अपने ही मानसपटल पर चित्र उभर आया है, उस

भावप्रणता में खोया हूँ। हाँ, कई वर्षों तक शैलाश्रयों की कला का संसार मनुष्य की निगाह में नहीं आ पाया। पर, कलापारखियों ने देख ही लिया। तो मध्यक्षेत्र केसला, पचमढ़ी, सिवनीमालवा, पानगुराड़िया, साँची, भीमबैठका, रायसेन, नरसिंहगढ़ और आदमगढ़ के शैलाश्रयों से परिचय हुआ। सुदूर वन क्षेत्र में युगीन सांस्कृतिक दृष्टिबोध से सम्पन्न परम्पराओं का आलोक फैला।

पुराविदों ने चित्रांकन की पूरक, अर्द्धपूरक, रेखा, अलंकृत, क्षेपांकन शैलियों का नामकरण किया तो उसी परम्परा के आलोक से आलोकित है, आदमगढ़ के शैलाश्रय। हाँ, 1918 में पहल शुरू हुई और फिर सिल-सिला चल पड़ा तो मेजर गोर्डन, डॉ. श्यामकुमार पाण्डेय, सत्येन मुखर्जी, डॉ. वाकणकर, डॉ. जगदीश गुप्त और राबर्ट आर.सी. ब्रक्स आदि ने आदमगढ़ के शैलाश्रयों का अनेक बार अवलोकन किया। कहा गया है 'कविता को पढ़कर सुनकर जो आनंद मिलता है वही 'रस' है।' तो पत्थर पर उकेरी इन कविताओं को हिया की अँखियों ने बाँचा था। संवेदनाओं को उमचाया था बस! भावसमाधिस्थ होकर आनंद विभोर हुए थे। तो पुराविदों ने लगभग तीन सौ चित्रों को पहचाना था। पुरातात्विक महत्व के कलातीर्थों के परिप्रेक्ष्य में साधनारत् रहे डॉ. धर्मेन्द्र प्रसाद के कथनानुसार- शैलाश्रय क्रमांक चार में यक्षी के चित्र ने पुराविदों को गहन चिंतन हेतु अभिप्रेरित किया। तो डॉ. जगदीश गुप्त ने अपनी पुस्तक 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला' में इसे वनदेवी बतलाया है। हाँ, यह बात स्पष्ट हुई है कि समृद्धि की आशा से ही यक्षणी के चित्रांकन पर पूजा पाठ की गई होगी। लोक तो अपने उत्सव पर्वो को मूर्तरूप देने के लिये लालायित रहता है। और जब प्रकृति की अनुकूल परिस्थितियों ने फसलों से खलिहान भरे हों तो सम्पन्नता की अधिष्ठात्री देवी की प्रार्थना वंदना करना प्रकृति से संतुलन बनाना ही तो है। पुराणों में कहा गया है :-

''कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थ मोक्षदय।
भागल्यं प्रथमं ह्येतर गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।।''

वेद व्यास जी लिखते हैं- **''प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।''** अर्थात् जो प्रत्यक्षदर्शी है जगत का - वही लोक है। तो इस संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में यह कहना समाचीन है कि अपने युगबोध से सृजित ये चित्र अपने अतीत से सीखने की ओर इंगित करते हैं, तो हम जान रहे हैं कि युद्धरत मनुष्यों के चित्रों में शैलाश्रय क्रमांक तीन के चित्र अधिक पुराने कहे गये हैं। तो क्रमांक दस में हाथी के प्राचीन चित्रों पर ही समय-समय पर और चित्र उकेरे गये हैं। परम्पराओं के हस्तांतरण की सुदीर्घ श्रृंखला यहाँ देखी जा सकती है। इसी स्थान पर महामहिषी के चित्र के नीचे जिर्राफ का चित्र है और घुड़सवार और धनुर्धर है। इन्हें देखकर संशय तो था सो डॉ. मनोहरलाल मिश्र ने अश्वों एवं जिराफ के चित्रों का शारीरिक संरचना को आधार मानकर तुलनात्मक अध्ययन कर यह स्पष्ट किया है कि उक्त चित्र जिर्राफ का ही है। शैलाश्रय क्रमांक नौ की छत में बारहसिंगा का मटमैले सफेद रंग का रेखाचित्र तो कलाकार की तूलिका का कमाल ही है जो विशिष्ट अंकन का प्रतीक है। तो शैलाश्रय बारह में बस! सूड़ वाले हाथी का चित्रण है। इसी प्रकार शैलाश्रय अठारह में तन्त्र-मन्त्र का चित्रण है। फिर शैलाश्रय क्रमांक बीस में पायजामा कुर्ता पहने एक युगल को नृत्य करते चित्रित किया है। यहाँ यह कहना प्रासंगिक है कि हृदय की मुक्तावस्था में ही रचा गया था कला का संसार। भरत मुनि ने ठीक ही लिखा है:- **''नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।''** तो अब प्रश्न तैर रहे हैं, कब बनाये गये हैं? क्यों बनाये हैं? और किसने बनाये हैं ये चित्र?

इन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में हम यह कह सकते हैं कि भाव सम्पदा तो थी उनके पास। फिर संवेदनाएँ आकार लेना चाहती थी। सो अवसर की तलाश में थी। बस! मेला, त्योहार के आते ही जगह तो चाहिए थी। हाँ, उनके पास कागज

कपड़ा तो था नहीं बस! अपने आसपास के पहाड़ों की छतनुमा चट्टानों की लम्बी चौड़ी काफ में उन्हें मिल गया प्राकृतिक केनवास। और पेड़ों की छाल, गोंद और आसपास की मिट्टी से ही घोंट-घोंटकर बनाया होगा सफेद, पीला, गेरूआ, लाल रंग रसायन। तो पत्थर की डुबकी-कुंडी में सहेजे रंगों से पशुओं के बाल और पेड़ों के रेशों से ही कूची बनाई थी। फिर तो अपने जीवन में घटित घटनाओं के कटु-तिक्त, आस्था-संघर्ष विरह-वेदना के तात्कालिक प्रसंगों को लेकर लोकमंगल की कामना से अपनी मनोदशा को यथा-हाथी, बृषभ, अश्व, सिंह, गाय, जिर्राफ, हिरन, नर्तक, वादक वाद्ययंत्र। गजारोही, अश्वारोही, तलवार, तीर कमान, झंडे निशान तो युद्धरत, नृत्यरत, आखेटक, तंत्र-मंत्र पूजा पाठ को रंगों रेखाओं में व्यक्त किया गया था। तो मनुष्य की परिष्कृत बुद्धि का ही परिणाम है। तो यह प्रतीत हो रहा है कि ये तथ्य युगीन सत्य के निकट इसलिये हैं क्योंकि हमारे पुरखों की हजारों वर्ष पुरानी परम्परा के भावात्मक रिश्तों के तार तो ऐसे जुड़े हैं कि आज भी घरों में जिरोती, सरवन, नाग, अल्पना, चौक, साँझी और ऊँ, स्वास्तिक, ऋद्धि-सिद्धि के चित्रांकन किये जाते हैं फिर उर्वर भूमि पर लोक साहित्य तो हरयाता रहा है। तो कह सकते हैं कि यथार्थ, काल्पनिक और पारदर्शिता से सम्पन्न विराट सांस्कृतिक उच्छाव की भिन्न-भिन्न मुद्राओं की झाँकियों का उत्स ही तो झलकता है शैलाश्रयों में।

झुरमुटों के बीच पहाड़ियाँ की ड्योढ़ी पर बैठे-बैठे पुराविदों के शोधग्रंथों शोध संदर्भों में आदमगढ़ के सुनहरे ऐतिहासिक आलोक में खो गए थे हम। फिर आ गए हैं हम उस पगडंडी नुमा सड़क पर। तो आज 14.11.12 को अपनी आँखों से देख रहा हूँ, यहाँ सुरम्य सा कोई वातावरण है न प्रकृति की सुषमा। बस सुनसपाट का पहरा है, अटारी के आसपास। आशातीत हल्की-हल्की उजास है आत्मानुभूति में। मानस पटल पर अंकित शैलाश्रय कहीं गुम हो गया है। बस! छरहरे सूबबूल की वागवानी के बीच से पत्थरों से अटी पंगडंडी चलती है तो साथ-साथ सूकला घास, गनेरा, धाँगल्ली, काँदी जैसी घास और जंगली तुलसी नौरंगा की झाड़ियों का समूह भी समुदाय बनकर साथ-साथ चल रहा है। तिनुक सी सरसराहट-खड़खड़ाहट से चौकन्नी चिड़ियों की चहचहाहट तो हुई ही नहीं। बस! कुछ पलाश, बबूल, बेर तो कुछेक छिरिया के गोपटा है, चौकीदारी में। रूपहला पर्दा जैसे खुल गया है छतनुमा तुली हुई चट्टानों के समूह। लाल पत्थरों की ये चट्टानें अति लुभावनी हैं। परत पर परत चढ़ी है। आँखें गढ़ाकर देख रहा हूँ, शैलाश्रय क्रमांक चार में कुछ धुँधली छबियाँ भर है। कहना पड़ा-''कहा गई वह वनदेवी और गतिमान शैली।'' और यहीं पर डॉ. विष्णुश्रीधर बाकणकर ने यक्षी के चित्र के पास ही ब्राह्मी लिपि में धाम शब्द लिखा देखा था। धाम शब्द को होशंगाबाद की क्षेत्रीय भाषा में नवरात्रि पर्व पर देवी देवताओं की स्तुति में आयोजित नृत्य गीत की प्रस्तुति को कहते हैं। तो चारों तीर्थ स्थल के लिये भी धाम शब्द का प्रयोग किया जाता है। पर, आदमगढ़ 'धाम' का वह तीर्थस्थल कहा है। और फिर मैं शैलाश्रय क्रमांक नौ को आँखों में भर-भरकर देख रहा हूँ। ओ! वह मटमैले सफेद रंग का बारहसिंगा का रेखाचित्र कहाँ है? कहाँ है उसकी उमंग और उमगते सातों सींग। अब चौकड़ी भरे तो कैसे भरे। हाथी के पीछे-पीछे चलते मार्गदर्शक अब कहा है? हाँ, शैलाश्रय दस जो नौ के पीछे ही है। यहाँ नाम पट्टिका थी नहीं। पूछने पर पता चला टूटी पड़ी है। एक कर्मचारी ने बतलाया यही दस है। नौ की पीठ पर दस सवार है। तो लाल गेरू से घुड़सवार पैदल सैनिक, गजारोही, अश्वारोही के हल्के धुँधले चित्र दिखाई दे रहे हैं। पिछले ही साल 27.11.11 की स्थिति में जो चित्र मैंने देखे थे। जितनी उजास पिछले साल थी वह उजास तो आज 14.11.12 को ही नहीं बची है। पूरक अर्द्धपूरक शैली के ये धुँधले चित्र और धुँधले हो गये हैं। वह उर्बर भावभूमि ऊसर हो गई है। तो उल्लेखित शैलाश्रय में से मात्र क्रं. चार, नौ एवं दस में ही कुछ धुँधले चित्र ही बचे हैं शेष शैलाश्रयों में कुछ भी नहीं है। हाँ, कुछ भी शेष नहीं है।

वे तो झर गये हैं, हरसिंगार की लय में। तो मधुमक्खी के छत्ते से मधु की तरह काफ की छतों से रंगरसायन टपक गए हैं। तो सारंगी की तरह उनकी झनझनाहट को इस सुनसपाट के पहरे में किसने सुना है, गुना है। फिर वे तो चट्टानों से निथरते बरसाती पानी में धुल गए हैं। हवा लगी तो उड़ गए। धूप से कुम्हला गए। और तो और आवारा गर्दी करने वालों की अकर्मण्यता की भेंट चढ़ गये। और हम देख रहे हैं कि पूरब में

दौड़ती सड़क है तो पश्चिम में धड़धड़ाती रेले हैं। पं. जवाहरलाल नेहरू का कथन है कि- ''समृद्ध सभ्यता में संस्कृति का विकास होता है और उससे दर्शन, साहित्य, नाटक, कला, विज्ञान और गणित विकसित होते हैं। किन्तु यहाँ जिला मुख्यालय पर नर्मदा के तट पर ये शैलाश्रय इतिहास के पृष्ठों पर ही रह गये हैं। और पहाड़ियाँ तो है नक्शे की सम्मोच रेखा पर। ओ! कह सकते हैं कि जानकार लोगों ने ही कहीं अधिक मर्यादा को तोड़ा है। तो फिर ग्राम जीवन ने अभी उस 'लय' को बचाए रखा है। हाँ, 19.02.2010 को मैंने अपनी आँखों से देखे उन साफ-चट चित्रों को मैं याद करता हूँ कि सिवनी मालवा के सुदूर वन अंचल में दुर्गम पहाड़ों में 'बूढ़ीमाई' के शैलाश्रय आज भी सुरक्षित हैं। इनमें भालाखोह, धुनिकाफ, घुघुकाफ के चित्र उजले हैं। मोरन नदी के दक्षिण तट पर दूनी नदी के किनारे ऊँचे पहाड़ की विस्तृत काफ में उकेरे गये चित्रों में शेर का चित्रांकन तो स्वयं ही बोलता है, जैसे आज ही उकेरा गया है। और यहाँ जिर्राफ के रूपायन की प्रतीति से यह बात सिद्ध होती है कि हजारों वर्ष पूर्व तक नर्मदा घाटी में जिर्राफ थे। और अद्‌भुत तो यहाँ की प्राकृतिक जल कुंडियों का नजारा है। बात स्वयं ही सिद्ध हो जाती है कि मनुष्य ने प्रकृति से ही कलाकारी सीखी है। पर, अब तो प्रकृति से छेड़छाड़ की जा रही है।''

तो इसी पहाड़िया के वे पत्थर बड़भागी हैं जो विश्वप्रसिद्ध सेठानी घाट पर लगे हैं। वे तो एड़ी पगथली की लुड़िया से घिस घिसकर धूल धूसरित होकर कितने चिकने चुपड़े हो गये हैं। दिनभर मेला लगा रहता है।

अब मैं पहाड़िया के पश्चिमी छोर पर हूँ। सूरज अश्ताचल की ओर जा रहा है। 'धूपगढ़' जैसा दृश्य तो है नहीं फिर भी आदमगढ़ की हैसियत का तो है। आदमगढ़ ऊँचाई में छोटा है धूपगढ़ से। हाँ, कही ऊँचा था पर समय का फेर है। अचानक रेलगाड़ी के निकलने की आवाज आई तो एक प्रश्न तैर गया- ''पहाड़िया के इसी छोर से दिल्ली-बम्बई रेलमार्ग से कितने ही पुराविद कला समीक्षकों ने सफर किया होगा?'' खण्डवा के पास एक छोटी सी स्टेशन है 'सुरगाँव बंजारी।' कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल जी इस स्टेशन के नामकरण पर ऐसे रीझे कि अपनी दो सौ उनचालीस पृष्ठ की किताब का नाम ही 'सुरगाँव बंजारी' रखा है। तो शायद 'आदमगढ़ पढ़कर, सुनकर पुराविदों कला समीक्षकों के हिया में लय सिरजेगी। और विभाग से भी अपेक्षा है ही। शायद भीमबैठका में 900 शैलाश्रय मिलने के बाद मध्य क्षेत्र के अन्य शैलाश्रयों पर ध्यान नहीं दिया गया है। तो कहना चाहूँगा संरक्षक पालक के वात्सल्य भरे स्नेह से 'बचपन' पल्लवित होता है तो लोरियाँ कालजयी हो जाती हैं।'

तो इसी पहाड़िया के वे पत्थर बड़भागी है जो विश्वप्रसिद्ध सेठानी घाट पर लगे हैं। वे तो एड़ी पगथली की लुड़िया से घिस घिसकर धूल धूसरित होकर कितने चिकने चुपड़े हो गये हैं। दिनभर मेला लगा रहता है। सपड़कर कोई-कोई लतर-पतर खड़े रहते हैं। आँख गड़ाकर देखते हैं चिन्हाई आते ही हुलसकर कह देते- ''भैया से कै दीजो सब अच्छो छे।'' ''हओ जीजी'' इतना सुनकर घाट के पत्थर तो आज भी तरबतर हो रहे हैं लोक को सिर आँखों पर उठाते-उठाते रेवा की अलौकिकता को निहार रहे हैं।

और यहाँ पहाड़िया के ऊपरी पृष्ठ पर खड़े होकर देखने से लगता है, स्वयं यह पहाड़िया भी हिचकोले खाती लगती है। उत्तर दक्षिण में फैली पूरी पहाड़िया दक्षिण पश्चिम की ओर करवट बदलती हुई लगती है जैसे ढह रही हो। भीतरी परतों का झुकाव भी दक्षिण पश्चिम की ओर दिखाई दे रहा है। नर्मदा घाटी तो भूकंप की तरंगों से संवेदनशील है ही। तो पहाड़िया की काया में कजी छायी हुई है। पत्ते पतोड़ी प्लास्टिक की अन्नी-पन्नी का कचर मचा हुआ है। चट्‌टानों के बीच से लदर-बदर करते उतर आया हूँ। तो जीवन के उत्सव से भरे दिन और रात की झिलमिलाहट के उन क्षणों को प्रणाम करता हूँ। जिनमें मृदुल अनुभूतियों से शताधिक चित्र उकेरे गये थे। और थोड़ी सुखद प्रतीति यह भी है कि चट्‌टानों पर ऊगे पत्थरचटा की औषधि अपने गुण और सुगंध से शैलाश्रयों की स्मृतियों को फैलाना चाहती है। तो झूलती चट्‌टानों में पनपते वृक्ष अपनी जमती जमाती जड़ों से चट्‌टानों को जकड़े रखे हुए है जैसे वे 'आदमगढ़' की पहाड़िया को टूटने-फूटने से बचाना चाहते हैं, उन्हें गर्व है कि-'''अदना' सा 'आदमगढ़' और नाम जग जाहिर।''

ऑफिसर रेसीडेन्सी, कंचननगर, रसूलिया, होशंगाबाद (म.प्र.)
मो.- 99265 44157

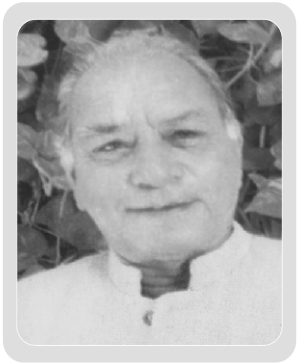

कृष्ण बक्षी के दो गीत

कृष्ण बक्षी
जन्म : 15 अक्टूबर 1942
जन्म स्थान: रावलपिंडी(विभाजन पूर्व)
गीत संग्रह : हवा बहुत तेज़ है-1981, एक भाषा है नदी की-1986, जमीन हिल रही है-1992, रंग बोलता है-2009, एक ग़ज़ल संग्रह 'रोशनी बेताब है'-2002
संपर्क
बरेठ रोड, आर के. पुरम, गंज बासौदा (म.प्र.) 464221
फोन नं.-07594-220324
मो.- 09752265734

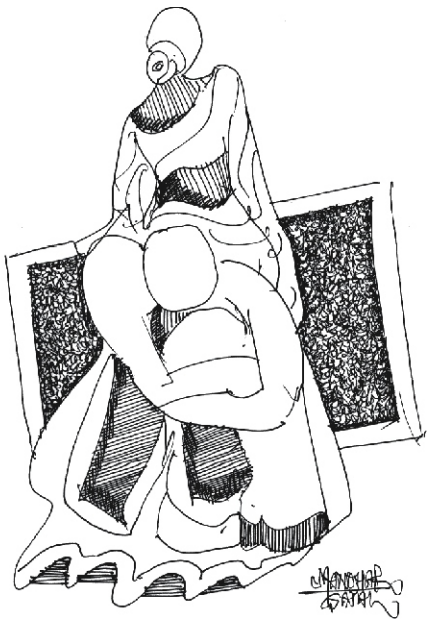

1. वर्तमान भी टूट रहा

अर्थ समझ न पाये
हम कुछ, ता-ता थैया का,
ढूँढ रहे हैं अभी रास्ता-
भूल-भुलैया का

अद्‌भुत तोहफ़ा मिला
समय की, नई तमीज़ों का
आधा कपड़ा बचा,
देह-पर ढकी कमीजों का
नंगे कूद रहे हैं सारे
स्वीमिंग पूलों में
भूल-भाल कर नाम
लोग ये, ताल-तलैया का

छाँछ फूँक कर पीते हैं
हम इतने दूध जले
कंक्रीट के महलों से-
थे आँगन वही भले
रोज़ शाम दीपक जलता था
तुलसी चौरे पर
लीप-पोत लेते थे-
घर में गोबर गैया का

वादा तो था सचमुच
हमको पार लगाने का
एक सुखद सपने की
चौख़ट तक ले जाने का
भूतकाल तो पहले ही
खंडित था बापू का
वर्तमान भी टूट रहा-
है बूढ़ी मैया का

2. तपन बहुत भोगी है

तपन बहुत भोगी है हमने
काफी अपना बदन जलाया

अभिनंदन की भाषा लिखकर
ऊँचे-ऊँचे पद हथियाते
हमसे नही बना, लोगों को
जाकर रोज़, सलाम बजाते
उद्‌घोषों या जयकारों में
घुल-मिल सके नहीं नारों में
अपना परचम स्वयं उठाया

लाभ-हानि या गुणा-भाग को
सचमुच कठिन समझ है पाना
अपने साथ चला है जो भी
उसको घाटा पड़ा उठाना
सारे अवसर छोड़-छाड़ कर
कभी न देखा जोड़-जाड़ कर
केवल ऋण ही ऋण अपनाया

तुमने किया नहीं कुछ ऐसा
इसीलिए हो हारे-हारे
लीक छोड़ कर चलने वाले
गये देर से ही स्वीकारे
जला अंधेरा, कुढ़ा उजाला
लेकिन सच-सच ही कह डाला
जितना भी हमसे बन पाया

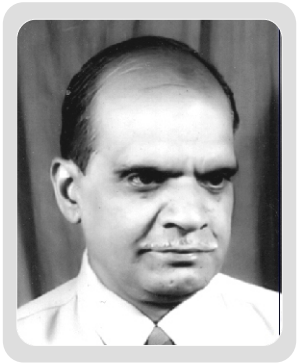

महेश अग्रवाल की दो ग़ज़लें

महेश अग्रवाल
जन्म : 04 अगस्त 1946
गीत संग्रह : और कब तक चुप रहें(ग़ज़ल संग्रह) 'जो कहूँगा सच कहूँगा' (ग़ज़ल संग्रह), पेड़ कब होगा हरा (ग़ज़ल संग्रह)।
संपर्क
71, लक्ष्मी नगर, रायसेन रोड, भोपाल (म.प्र.)-462021
दूरभाष : 0755-2754852
मो.- 092291 12607

1. आपस के रिश्तों की बहती..

द्वारे-द्वारे जब भी आती है चिट्ठी
खूब हँसाती खूब रुलाती है चिट्ठी

तन्हाई में जब सन्नाटे बुनता हूँ
ऐसे पल में साथ निभाती है चिट्ठी

आपस के रिश्तों की बहती नदिया में
स्मृतियों की नाव चलाती है चिट्ठी

अँधियारे की गठरी भी लेकर आती
और कभी सूरज बन जाती है चिट्ठी

फूल कहीं भी महके लेकिन खुशबू का
थोड़ा सा अहसास दिलाती है चिट्ठी

शब्दों की शक्लों में उनके भावों को
अपनों से अपनों तक लाती है चिट्ठी

सिर्फ इसे कागज का टुकड़ा मत कहना
अपने गुज़रे दिन की थाती है चिट्ठी

1. ज़िन्दगी मंजूर है तेरी..

अब किसी से कुछ कहा भी तो नहीं जाता
किन्तु ऐसे चुप रहा भी तो नहीं जाता

खत्म होंगी अब हदें बर्दाश्त करने की
दर्द ऐसा अब सहा भी तो नहीं जाता

किस कदर झुलसी हुई है ज़िन्दगी अपनी
आग में हर पल दहा भी तो नहीं जाता

साथ जब अपने किनारे ही नहीं देते
तो नदी से अब बहा भी तो नहीं जाता

छोड़ आये बहुत पीछे कुछ हसीं लम्हे
हाथ उनका अब गहा भी तो नहीं जाता

मानता हूँ ज़िन्दगी में हैं दरारें पर
रेत-महलों-सा ढहा भी तो नहीं जाता

ज़िन्दगी मंजूर है तेरी सभी शर्तें
यूँ कभी तुझ बिन रहा भी तो नहीं जाता

71, लक्ष्मी नगर, रायसेन रोड,
भोपाल (म.प्र.) -462021 मो.- 092291 12607

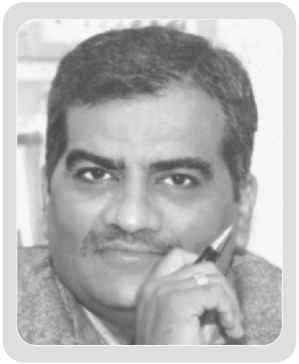

राग तेलंग की छः कविताएँ

राग तेलंग
जन्म : 28 अप्रैल 1963 शहपुरा जिला-डिंडोरी (म.प्र.)
शिक्षा: एम.एससी. (इलेक्ट्रॉनिक्स)
कविता संग्रह : शब्द गुम हो जाने के ख़तरे, मिट्टी में नमी की तरह, बाज़ार से बेदख़ल, कहीं किसी जगह, कई चेहरों की एक आवाज़, कविता ही आदमी को बचाएगी, अंतर्यात्रा, समय की बात (निबंध संग्रह)
संपर्क
जी-4, फॉरच्यून एन्क्लेव, सर्वधर्म कोलार रोड, भोपाल-462042 (म.प्र.)
ई.मेल: raagtelang@gmail.com

1. डूबना

तैरना
डूबकर ही सीखा जा सकता है

इसलिए
पहले डूबो
कहीं भी
किसी भी हद तक

तब ही शुरू होगी
ज़िंदगी के लिए छटपटाहट

देखना
जीना तुम्हें आ गया।

2. हारमोनियम

दरअसल पार्श्व में बजते
उस हारमोनियम का मद्धिम स्वर
मुख्य हुआ करता हर तराने में
जिसकी आवाज़ के बगैर
कोई भी कह उठता 'कुछ कमी थी'

हर संगीत के पूरेपन तक
साथ निभाने वाला बेहद ज़रूरी साज़
हमेशा नेपथ्य में रहता
जहां तक रोशनी को केन्द्रित करने का
कभी खयाल नहीं किया गया

उसकी पहुँच
ऐसे किसी भी शख्स तक हो जाती
जिसकी योग्यता में
एक जोड़ी रबर की चप्पल और
टूटी-फूटी साइकिल पास होना होता

पेट पालने के लिए
मजमा लगाने वालों के पास भी
देखा गया हारमोनियम
जिसे बजाना शुरू करने के पहले
वे उसके चरण छूते

चलता था हारमोनियम और
चलता था ऐसे
दीन-हीन जन का सफर

गरीब गुरबे
अपने हुनर के काम में जब लगे रहते
हारमोनियम की आवाज़
उनके शरीर को लय देती

तब काम मुख्य नहीं
हारमोनियम का
मन में बजना
महत्वपूर्ण हुआ करता

अब स्मृतियों में जगह बनाने को
बेचैन है हारमोनियम
जिसका आर्तनाद
सुनने वाला कोई नहीं

एक और साज़ की आवाज़
गुमशुदा की फेहरिस्त में जुड़ी
तो साथ-साथ
अफसोस करने वाले भी तो
धुंध में समाते जा रहे।

3. हवा पर नज़र

नफरत
अपनी आंखों में
आग लिए आई

ठीक वहीं पर
प्रेम खड़ा था
आंखों में पानी लिए

सवाल
अब सिर्फ
हवा के रुख़ का था।

4. कलाकार

कलाकार
मन का राजा होता है

वह जब चाहे
राजा की तरह सोच सकता है

राजा के यह बस में नहीं
सोच सके
एक कलाकार की तरह

कभी-कभी तो कलाकार
भगवान का भेष धर लेता है

भला और किसके बस में है
ऐसी कलाकारी !

5. भाषा

आदमी मन ही मन जो भाषा बोलता है
वही उसकी मातृभाषा है
वही उसके पेट की भाषा होगी
वही उसकी पीढ़ी की भाषा
वही देश की भाषा भी

भाषा आदमी के रहते तक रहेगी
आदमी खत्म, भाषा खत्म
भाषा खत्म, आदमीयत खत्म

जो बचेगा, वो पढ़ेगा
जो पढ़ेगा, वो बचेगा।

6. कविता ही आदमी को बचाएगी

एक दिन
पुराने लोगों की वजह से पैदा हुआ
नए ज़माने का एक आदमी मर रहा होगा
खाट पर अकेला पड़ा हुआ और उतने में
उसके यकीन के किस्सों में से कोई वैद्य प्रकट होगा और

बिना नब्ज़ टटोले बता देगा कि
इस आदमी को अब तो कविता ही बचा सकती है
ऐसी कविता जो मर-मर कर लिखी गई हो
जिसमें बचे रहने की कोशिशों की अंतिम आवाज़ें हों
वे ही रामबाण साबित हो सकती हैं

अब सवाल यह आन खड़ा होता है
कहां है ऐसी कविता जो बचा सके किसी मरते हुए को
जिसमें कूट-कूटकर भरी हो बच जाने की आशाएं
जो बन सके संजीवनी बूटी !

आजकल की सारी प्रायोजित कविताएं तो
खुद कवि को मारती रहीं हैं सबसे पहले
ऐसी कविता भला क्या बचाएगी किसी को ?

जो कविता कवि की हत्या में शरीक नहीं हो सकी
उसी को हथियार बनाकर निंदकों ने कवि को मार दिया
तो अब बचा ही क्या ?
रही वह कविता
जो समेटे थी अपने भीतर
जीवन के अनंत स्वप्न
उसे रचने वाले गुमनाम कवि ने
कभी वैद्य होने के सपने खरीदे थे बचपन में
एक बार उसे सपना आया कि
अचानक एक दिन उसे बुलाया गया वैद्य समझकर
किसी गली के किसी अनजान घर में
जहां नए ज़माने का एक आदमी मर रहा था
खाट पर अकेला पड़ा हुआ
मरणासन्न आदमी के मुँह से
जो बोल फूट रहे थे वे कवितानुमा थे
कुछ-कुछ उसकी कविताओं की तरह

सार यह कि
मरते हुए एक आदमी अगर एक कविता बोल सकता है
तो एक कवि ही दावे के साथ
वैद्य की जगह लेकर
कह सकता है
अब आदमी को कविता ही बचा सकती है।

समीक्षा

विरासतें जड़ नहीं जीवन्त

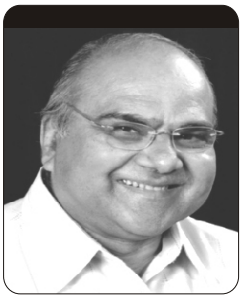

- नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

राजस्थान विरासतों की ऐसी अनुपम भूमि है जहां विरासतें मूक नहीं हैं, जड़ नहीं हैं बल्कि वे वाचाल और जीवन्त हैं। वे केवल इतिहास का आख्यान नहीं करती बल्कि वे अपने आप में अपने गौरव की आख्याता हैं। यहां के नगर, दुर्ग, प्रासाद, मंदिर, अंकन, मूर्तियाँ तथा परम्पराएं अपने आप में अद्वितीय हैं। जिनका अपना सुदीर्घ इतिहास है।

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि राजस्थान के विभिन्न जिलों में अवस्थित इस विरासत का अध्ययन हो रहा है तथा बीते समय में विद्वानों ने अपना जीवन लगाकर यह अध्ययन किया भी है लेकिन अभी भी इस महान विरासत के अनेक अध्याय उजागर होना शेष है।

राजस्थान की उर्वर धरा की यह भी एक महान विशेषता है कि यहाँ इस विरासत के अध्ययन करने के लिए अपना जीवन लगाने वाले विद्वान भी होते रहे हैं जिन्होंने पूरे समर्पण भाव से इस विरासत को देखा और पढ़ा है तथा अपने सुचिंतित निष्कर्षों से इस विरासत के अध्ययन को भविष्य की पीढ़ी के लिए सौंप दिया है। इन अर्थों में राजस्थान की महान विरासतें युगों के साथ और समृद्ध होती चली गई हैं।

इस श्रृंखला में आज के राजस्थान में एक

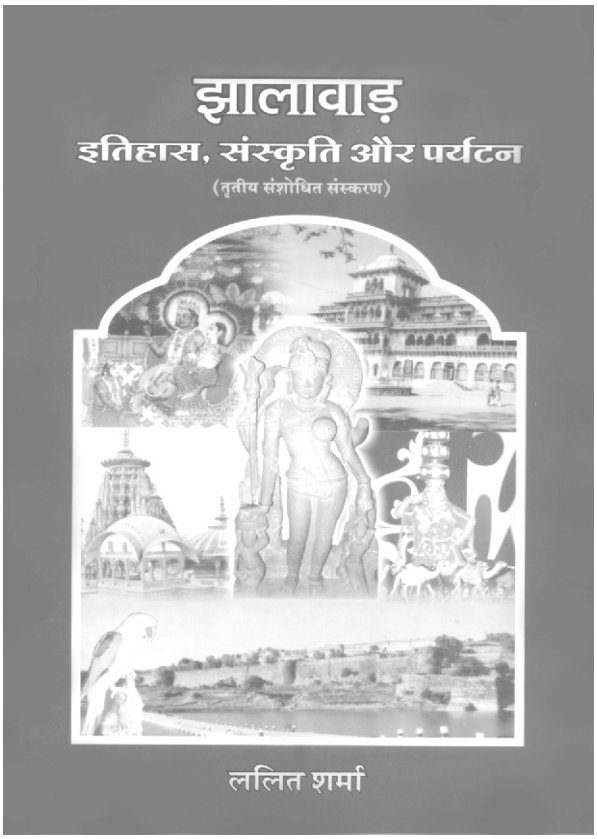

महत्वपूर्ण नाम श्री ललित शर्मा का है जिन्होंने अपने सीमित संसाधनों के बीच झालावाड़ अंचल की महत्वपूर्ण विरासत का अध्ययन करने और उसके अचीन्हे पक्षों को उजागर करने में अपना जीवन लगाया है। मैं यहाँ यह भी कहूँ कि इनका यह प्रयास इकलौता प्रयास नहीं है। इस प्रयास में शामिल हैं उनकी विदुषी धर्मपत्नि गायत्री और बेटी तितिक्षा जो उनके ऐसे हर प्रयास को सफल बनाने में अपना पूरा-पूरा योगदान देती रही हैं।

इसी क्रम में हाल ही में एक वृहद शोधपूर्ण अध्ययन श्री ललित शर्मा ने किया है जिसमें उन्होंने झालावाड़ के समग्र इतिहास, पुरातात्विक सम्पदा तथा यहां की विरासतों का विवरण एक सुन्दर सुबोध ग्रंथ में समाहित कर दिया है, जो उज्जैन से प्रकाशित किया गया है।

झालावाड़ की धरती अपने आप में प्रागैतिहास से लेकर महाभारत और बौद्ध युग तक के सांस्कृतिक इतिहास को छिपाये हुए है। गंगधार की पुरातात्विक सभ्यता 5वीं सदी से भी पूर्व की मान्य की गई है। पवित्र और पापनाशिनी चन्द्रभागा के तट पर बसी चन्द्रावती नगरी का अद्भुत

शिल्प 7वीं- 8वीं सदी का मान्य है। यहां का शिल्प वैभव समूचे उत्तरी भारत के शिल्प वैभव में अपना सर्वोच्च स्थान रखता है।

झालावाड़ के इतिहास में एक महत्वपूर्ण पृष्ठ तब जुड़ा जब यूनेस्को के द्वारा जलदुर्ग गागरोन को विश्व विरासत के रूप में घोषित किया गया। यह महान संत पीपाजी का स्थान है जो कबीर के साथी थे और जिन्होंने यहां के शासक होते हुए भी अपना सबकुछ त्याग कर अपनी भार्या के साथ रामानंद परम्परा केर्तक स्वामी रामानंद के शिष्य हो गए। कबीर की निर्गुण परम्परा में संत पीपाजी का अन्यतम स्थान है।

पद्मनाभ मन्दिर झालरापाटन का कलात्मक मूर्ति शिल्प

झालावाड़ के निकट की कोलबी की बौद्ध गुफाएं बौद्ध स्थापत्य की अनुपम उदाहरण हैं। झालरापाटन नगरी सेठ साहूकारों और सनातनी मन्दिरों के कारण भारत प्रसिद्ध है। झालावाड़ नगर अवश्य ही सन् 1791 ई. में निर्मित होने लगा तथा परवर्तीकाल में सैनिक छावनी के रूप में रुपांतरित होकर नगरीय सभ्यता के स्वरूप में आया। बाद में यहां भारत प्रसिद्ध भवानी नाट्यशाला बनी जिसकी यशकीर्ति महान नृत्यकार पं. उदयशंकर और उनके अनुज प्रसिद्ध सितारवादक पं. रविशंकर के कारण विश्वविश्रुत हो गयी। यह बहुत कम लोग जाते हैं कि उदयशंकर और पं. रविशंकर का परिवार झाला राजपरिवार के संरक्षण व सानिध्य में झालावाड़ में रहा है।

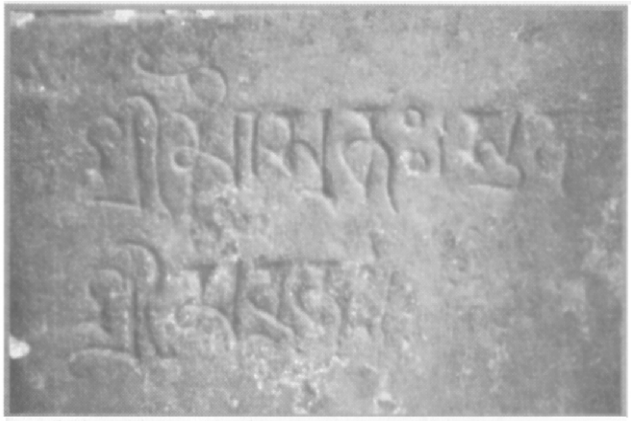

चन्द्रमौलीश्वर मन्दिर (चन्द्रावती) का स्तम्भ लेख 'श्री मौसुक:सुत श्रीमचुंक'

झालावाड़ के शिल्पी हैं महान कूटनीतिज्ञ झाला जालिम सिंह जिन्होंने कोटा के साम्राज्य को बचाया और झालावाड़ की स्थापना की नींव रखी।

यहां की महान चित्रांकन परम्परा तथा भव्य सूर्य मंदिर व जैन मंदिर के स्थापत्य ने चित्रांकन व स्थापत्य के इतिहास में अनुपम पृष्ठ जोड़े।

यह बानगी है झालावाड़ से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण विरासतों की जिन पर श्री ललित शर्मा ने विस्तार से प्रकाश डाला है। श्री ललित शर्मा ने तथ्यों की पुनरावृत्ति नहीं की है अपितु उन्होंने अत्यंत परिश्रम के साथ इन विरासतों से जुड़े अनेक नये पहलुओं की खोज की है। उन्होंने एक श्रमसाध्यकारी यहां के शिलालेखों को पढ़ने का काम किया है और उसके पश्चात् यहां के इतिहास का पुनरावलोकन कर इस ग्रंथ की रचना की है। यह केवल एक ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है अपितु यह सांस्कृतिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में इतिहास और संस्कृति की धारा समवेत रूप से प्रवहमान है।

21 अध्यायों में विभाजित इस ग्रंथ में झालावाड़ के सांस्कृतिक इतिहास का सिंहावलोकन प्रस्तुत कर श्री शर्मा ने विभिन्न क्षेत्रों, नगरों, मन्दिरों, अन्य ऐतिहासिक महत्व के स्थलों व लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर प्रामाणिक रूप से रोचक शैली

में यहां के सांस्कृतिक इतिहास को प्रस्तुत किया है। इस इतिहास में गंगधार, कोलबी की बौद्ध गुफाएं, रटलाई का अद्भुत तंत्रपीठ रामकुण्ड बालाजी, विश्व धरोहर जलदुर्ग गागरोन, नागेश्वर पार्श्वनाथ, मनोहारी मनोहर थाना, पिड़ावा-सुनेल, क्यासरा के कायावर्णेश्वर महादेव व डग सहित झालावाड़ व उसके आसपास के तमाम स्थलों का परिचय श्री शर्मा ने अपने इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।

ग्रंथ के संदर्भों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने कर्नल जेम्सटाड सहित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्यामलदास जैसे स्वनामधन्य पुरावेत्ताओं के ग्रन्थों के साथ-साथ मालवा के लब्ध प्रतिष्ठित इतिहासविदों उपेन्द्रनाथ डे, पं. सूर्यनारायण व्यास, डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर, डॉ. श्यामसुन्दर निगम एवं डॉ. रघुबीर सिंह सीतामऊ के ग्रन्थों का भी गंभीरतापूर्वक अनुशीलन किया है।

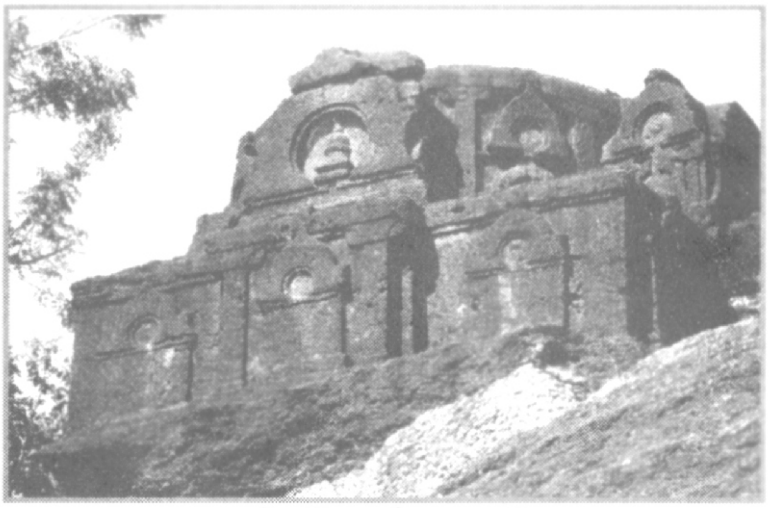

कोलवी का बौद्ध गुफा शिल्प

मध्ययुगीन इतिहास एवं लोक संस्कृति का उल्लेख करते हुए लेखक ने महू-बोरदा(महू मैदाना) अध्याय में 'परथीराज का कड़ा' नाम से एक पूरी ही लोकगाथा को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें अकबर के सेनानायक मानसिंह और महू के वीर युवक 'परथीराज राठौड़' हाड़ौती बोली में ऐसा गुणगान है जैसा बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध योद्धा 'आल्हा ऊदल' की आल्हा का है।

झालावाड़ की धरा प्राचीन मालवा, खीची राजवंश एवं झाला राजवंश के उदात्त इतिहास की साक्षी है। लेखक ने यहां के इतिहास तथा इन राजवंशों के विभिन्न राजाओं के योगदान की विषद् चर्चा की है। श्री शर्मा ने ग्रंथ के अंत में एक पूरा अध्याय हवेली परम्परा पर भी लिखा है तथा इस अंचल के प्रसिद्ध सेठ बिनोदीराम बालचंद के योगदान को रेखांकित किया है।

राजस्थान के इतिहास के गंभीर अध्येता तथा समर्पित सर्जक व मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ के वर्तमान संचालक व मीरायन जैसी लब्ध प्रतिष्ठित पत्रिका के संपादक डॉ. सत्यनारायण समदानी ने अपनी भूमिका में श्री शर्मा के इस कृतित्व का सच्चा आंकलन किया है तथा विश्व धरोहर के रूप में गागरोन दुर्ग को स्थान दिलाने के लिए व संत पीपाजी को राजस्थान विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कराने के लिए उनकी प्रशंसा की है।

राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास के संबंध में समय-समय पर अनेक प्रकाशन हुए हैं। जिनके माध्यम से राजस्थान की विरासतों के संबंध में जानकारी मिलती रही है। किन्तु यह अभी भी अपेक्षित है कि एक अंतर्अनुशासिक दृष्टि से इन विरासतों का अध्ययन किया जाए, जिसमें केवल इतिहास ही न हो बल्कि उस इतिहास के अंतर में सिमटी हुई संस्कृति की भी जानकारी सामान्यजन को मिले।

इतिहास की गंगा और यमुना तो दृश्यमान होती हैं किन्तु संस्कृति की अंत:सलिला के दर्शन हम नहीं कर पाते। भाई ललित शर्मा को मैं इसलिए साधुवाद देता हूँ क्योंकि उन्होंने झालावाड़ क्षेत्र की इस सांस्कृतिक सरस्वती को हमारी आंखों के समझ दृश्यमान किया है। उनका यह आधुनिक भगीरथी प्रयास कभी थमे नहीं यही कामना हम सभी को करनी चाहिए।

- नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, 'श्याम आशीष', 85, इन्दिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के सामने, केसरबाग रोड, इंदौर (म.प्र.) मो.-9425092893

समीक्ष्य पुस्तक 'झालावाड़ इतिहास, संस्कृति एवं पर्यटन' -ललित शर्मा, प्रकाशक-पर्यटन विकास समिति, झालावाड़, प्रकाशन : 2017 ई. (तृतीय संस्करण) मूल्य-रूपए 350/- मो.-9829896368 ■

स्मृति शेष

धरती की गहरी पीड़ा में शामिल चन्द्रकांत देवताले

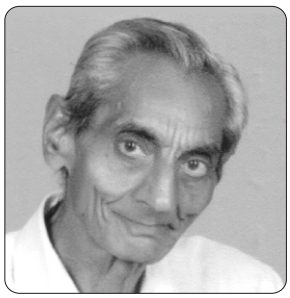

– राधेलाल बिजघावने

क्रूर परिदृश्य मानवीय जीवन में जब सक्रिय हो जाते हैं तो रचनाकार निडर होकर अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। उसकी रचनाओं में वक्त बोलने लगता है। संवेदना का स्वाभिमान बढ़ जाता है तथा मनुष्य की आयु बढ़ जाती है क्योंकि स्वाभिमान सम्पन्न रचनाकार तमाम-जीवन के संघर्षों से गुजरते हुए उन्नत एवं उज्ज्वल सामाजिक एवं सांस्कृतिक भविष्य को देखता है। चन्द्रकांत देवताले भी तमाम सामाजिक विसंगतियों, दुखों, पीड़ाओं से गुजरते हुए आम आदमी के सामाजिक एवं सांस्कृतिक भविष्य को अत्यंत आशावादी दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि आम आदमी के प्रति उसकी गहरी आस्था है। वे तमाम जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं और इसी संघर्ष में अपना जीवन भी समाप्त कर देते हैं।

प्रगतिशील रचना आन्दोलन को जब सार्थक लेखन के रूप में स्वीकारा जा रहा था और वह गौरव मंडित हुआ जा रहा था, चन्द्रकांत देवताले का कविता संग्रह 'दीवारों पर खून से' आते ही चर्चा के केन्द्र में आ गया। इसलिए भी कि संग्रह की कविताएं आम आदमी की पीड़ित संवेदनाओं से बतियाती थीं और उनकी हमदर्दी पूरी आस्था और विश्वास के साथ समेटती थीं। इसलिए भी कि चन्द्रकांत देवताले का मुख्य ध्येय जनपद तक पहुँचाने का था, जैसा कि नागार्जुन और त्रिलोचन का ध्येय था।

जनपद का आदमी यह नहीं जानता कि उस पर लिखी गई कविताओं में कितना कलात्मक शिल्प है। वह तो अपनी भूख, दुख, गरीबी, अभाव की संवेदनाओं को जीता है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि कवि के पास जनपद के आदमी के प्रति स्नेह, उसकी सहायता और दुख बांट लेने के विचार इस दुनिया से विदा हो गये। चन्द्रकांत देवताले जनपद का आदमी चाहे उनकी कविताओं को समझ पाये अथवा नहीं, फिर भी जनपद के आदमी के पास पहुंचकर, उनके जीवन, परिवेश, भाषा संस्कृति से जुड़ने की कोशिश करते रहे हैं और काफी हद में सफल भी हुए हैं।

'लकड़ बग्घा हंस रहा है' चन्द्रकांत देवताले के कविता संग्रह की रचनाओं की बनावट एवं शिल्प अलग तरह का नया आधुनिकता की संवेदनाओं को गहरे से जुड़ा हुआ है, क्योंकि मनुष्यता को नवीन आइने में इन्होंने देखना शुरू कर दिया था।

चन्द्रकांत देवताले की कविताएं दुखानुभूति तथा सुखानुभूति के क्रम को अस्वीकारती नहीं, क्योंकि मानवीय जीवन में भी यह क्रम टूटता नहीं। इसलिए मानवीय सुख, दुख, उत्साह और विवाद को गहरे कारणों की पड़ताल चन्द्रकांत देवताले की कविताएं करती हैं तथा द्वंद्वात्मक तनावों से गुजरती हैं। कई बार लगता

चन्द्रकांत देवताले जनपद का आदमी चाहे उनकी कविताओं को समझ पाये अथवा नहीं, फिर भी जनपद के आदमी के पास पहुंचकर, उनके जीवन, परिवेश, भाषा संस्कृति से जुड़ने की कोशिश करते रहे हैं

है, चन्द्रकांत देवताले मुक्तिबोध के कद काठी के रचनाकार हैं क्योंकि इनकी कविताएं कुत्सित समय के और बहिष्कृत समय की आत्म परीक्षा की हैं।

'भूखंड तप रहा है' चन्द्रकांत देवताले की लंबी कविता का संग्रह है जो 1982 में प्रकाशित हुआ है। 'भूखंड तप रहा है' संग्रह जब आया उस समय भारतीय जीवन में अलग किस्म की सामाजिक एवं राष्ट्रीय विपदाएं थीं। यह कठिन समय था। जैसे नक्सलवाद ने उस समय पूरी ताकत से सिर उठा लिया था और देश विभाजन की उनकी गलत मंशा ताकतवर होती चली जा रही थीं इसके साथ ही राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ सक्रिय हो चुकी थीं। अशांति फैली थी। 'भूखंड तप रहा है' 80 पृष्ठ की लंबी कविता है, जो एक तरह से आठवें दशक के आक्रोश, युक्त क्रांति और परिवर्तन की आग को बढ़ाने का काम तेजी से चल रहा था। चन्द्रकांत देवताले के दिल और दिमाग में इस तरह के आक्रोशयुक्त आन्दोलन, जो देश की शांति में खलल पहुँचा रहे थे, के प्रति एक तरह की घृणा, हिकारत की भावना स्फूर्त हो गई थी जो इनकी कविताओं में प्रतिबिम्बित होती हैं, क्योंकि उस समय उग्रवाद पंथ का असंतोष भी उनके दिमाग में था।

जनपद का आदमी यह नहीं जानता कि उस पर लिखी गई कविताओं में कितना कलात्मक शिल्प है। वह तो अपनी भूख, दुख, गरीबी, अभाव की संवेदनाओं को जीता है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि कवि के पास जनपद के आदमी के प्रति स्नेह, उसकी सहायता और दुख बाँट लेने के विचार इस दुनिया से विदा हो गये।

समकालीन परिदृश्य में जगह बनाने के लिए रचनाकार को बहुत श्रम और संघर्ष करना पड़ता है जिसमें खट्टे-मीठे अनुभवों की कोई कमी नहीं होती। चन्द्रकांत देवताले की कविताओं में भी मनुष्यता की धमन भट्टी की आग से जली तपी परिपक्वता आ गई, क्योंकि इनमें रचनाकार का श्रम, संघर्ष और अनुभवों की गहनता, वैचारिकता है। इसलिए इनकी कविताओं में विविधता का सजीव संसार है। इसमें जीवन का यथार्थ परिदृश्य और भोगा हुआ यथार्थ प्रतिबिम्बित होता है।

''जहां पत्थरों के फफोलों के बीच से
झांकती दरदरी जमीन
जिस पर चलते बैलों के
घुटने मुड़ते कई बार
रहट की टूटती रस्सी
फिर भी उलीचा लगातार पानी
उगाने कुटकी
बढ़ाने ऊख
वह पहुँच जाता है जैसे
उतरते हुए अंधेरे के पानी में
नीचे और नीचे गहरे
और देखता है गढ़ी का शाही दरवाजा।
हाथियों के मस्तकों को चुनौती देता हुआ।''

चन्द्रकांत देवताले की रचना दृष्टि सृष्टि में आंचलिकता यानी कि मालवा की कर्म भूमि का स्थापत्य है और ये निश्चित ही अपने लोकांचल से बहुत नजदीक से जुड़े हैं। भाषा परिवेश और सोच समझ के स्तर पर भी, इसलिए इनकी कविताएं व्यक्तित्व सम्पन्न तो हैं ही, आत्म निर्मित भी हैं। क्योंकि ज्ञान और संवेदना इनके परिवेश और भौगोलिक परिदृश्य से जुड़ गया है इसलिए ये लोकजीवन को जीते, बसते मनुष्य की हर चुनौती का सामना करने के लिए कभी भी हिचकिचाते नहीं। ये समय की चिंताओं के कारण और उत्तर, अत्यंत गंभीरता से तलाशते हैं। इसके साथ ही उनके जीवन मूल्यों तथा हित चिंताओं को भी सुरक्षित रखते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इनकी कविताएं अपसंस्कृति से रचनात्मक मुठभेड़ करती हैं। देवताले की कविताएं निर्माणोन्मुख, अभिवादन तथा अभिनंदन की हैं, जो भावनात्मक उत्प्रेरणा तथा स्तब्धता से भर देती हैं। इसके साथ ही चुपचाप जीवन का क्रम बदल देती है।

'जिसकी आंखों से ओझल नहीं हो रहे खंडहर
समय के पंखों को नोंच
अपने अकेलेपन को तब्दील कर रही जो पतझर में
बिन दर्पण कुतर रही अपनी ही परछाईं

घर के फाटक पर चस्पा कर दी सूचना
यहां कोई नहीं रहता
उसे पता तक नहीं
गाती हुई आवाजों के घर में
कहीं कोई भी रहा है
उसके लिए।'

आज उपभोक्तावाद, बाजारवाद तथा आधुनिकतावाद मानवीय जीवन में यांत्रिकता ला रहे हैं इसलिए उनका प्रेम, यांत्रिक, मुखौटों में तब्दील हो गया। तिरस्कार हर आदमी के दिल दिमाग में आकर बैठ गया जहां प्रेम स्नेह के लिए कोई समय और जगह नहीं। हर आदमी के जीवन का उद्देश्य पैसा और व्यापार में बदल गया। यह गहरे मानवीय और सामाजिक संताप की स्थिति है। उस स्थिति को बदलना आसान नहीं। देवताले की कविताएं इस ओर सबका ध्यान आकर्षित कर मानवीय, स्नेह, प्रेम की वापसी के लिए पहल करती हैं। इसलिए कि देवताले की कविताएं संघर्ष काल में ढाल का काम करती हैं। शायद यही कारण है कि देवताले की कविताओं की अनुभूतियों का क्षेत्र बहुत बड़ा है। इनकी रचना भाषा का एक अलग ही व्याकरण है जो सही रचनाशीलता के जागृत विवेक को पहचानती हैं। समय की नोंक पर जीवन जीना आसान नहीं पर देवताले समय की नोक पर जीते हैं और खतरों का चुपचाप सामना भी करते हैं। लगता है जैसे कोई खेल और नाटक का दृश्य उनकी आंखों के सामने घूम रहा है, अपने ही घर में–

'एक दूसरे के बिना न रह पाने
और ता जिंदगी न भूलने का खेल
खेलते रहे हम आज तक
हालांकि कर सकते थे नाटक भी
जो हमसे नहीं हुआ।
किन्तु समय की उसी नोंक पर
कैसे सम्भव हमेशा साथ रहना दो का
चाहे वे कितने ही एक क्यों न हों
तो बेहतर होगा हम घर बना लें
जगह के परे भूलते हुए एक दूसरे को
भूल जाएं खुद ही को
गरज फकत इतनी
कि बहुत जी लिए
इसकी उसकी अपनी-तुफनी मेरी-तेरी करते परवाह
अब अपनी ही इजाजत के बाद
बेमालूम तरीके से
अवश्य होकर रहे हमें
कोहरे के बेनाम बेपता घर में।'

धूमिल शब्द और आचरण के अलग-अलग व्याकरण को समझते थे, फिर निष्कर्ष पर पहुंचते थे।

देवताले की कविताओं की अनुभूतियों का क्षेत्र बहुत बड़ा है। इनकी रचना भाषा का एक अलग ही व्याकरण है जो सही रचनाशीलता के जागृत विवेक को पहचानती हैं। समय की नोंक पर जीवन जीना आसान नहीं पर देवताले समय की नोक पर जीते हैं और खतरों का चुपचाप सामना भी करते हैं। लगता है जैसे कोई खेल और नाटक का दृश्य उनकी आंखों के सामने घूम रहा है।

चन्द्रकांत देवताले भी शब्दों के आचरण को बहुत गहरे से समझते हैं और फिर मित्रों के बीच इसका इस्तेमाल करते हैं। यही वजह है इनकी रचनाओं में भी शब्दों के आचरण बराबर पूरी ईमानदारी के साथ उपस्थित रहते हैं। चन्द्रकांत देवताले की कविताएं देह की अनुभूति की कविताएं नहीं बल्कि मानवीय जीवन के अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र की हैं, जिनमें संस्कृति का आचरण शिष्ट एवं विशिष्ट होता है।

चन्द्रकांत देवताले की कविताओं में आत्मविस्मरण, आत्मनि:स्वता प्रेम का एक निरबाधित चरित्र है जो कभी पुराना नहीं पड़ता। प्रेम कोई नाक भौहें सिकुड़ने वाली आत्म संवेदना नहीं, बल्कि ये मनुष्य के आंतरिक भाव संवेदनों को ठीक रूप से समझने की जरूरी कोशिश का अवसर प्रदान करता है, जो रचनायें उत्साह, स्फूर्ति का

संचार करती हुई जीवन के सुखद आचरण तक पहुंचाती हुई जीवन के सुखद आचरण तक पहुंचाती हैं। इस तरह का प्रेम लोकधर्मी कविताओं में ज्यादा मुखर होकर सामने आता है जो कविता यात्रा को नया मोड़ भी देता है। सभ्यता लोचन प्रेम, जिसमें जन चेतना की उपलब्धि पर्यावसित होती है। इसलिए पद एक अन्वेषी आकांक्षा का प्रतिरूप है अन्यथा मुखौटे ही मुखौटे पूरे सामाजिक परिदृश्य में दिखाई देंगे। मुखौटों में आपसी प्रेम स्नेह की कहीं कोई संभावनाएं और गुंजाइश नहीं। एक रूखापन होता है बल्कि ईर्ष्या द्वेष की भावना को समृद्ध करने का जरूरी जरिया है।

'आपस में भाईयों के मुंह पर
चस्पा कर दिये हैं दुश्मनों ने
अपने खुद के मुखौटे
हितैषियों के मुखौटे लगा दिये
जल्लादों के चेहरों पर
इस तरह अपने और परायों के
मुखौटे बनाने का जबरदस्त धंधा
दिव्य गंध नामक कारखाने में इस बार
इंसाफ के तराजू के सामने
खड़ा है टैंक
और फांसी के तख्ते पर
पुष्प सज्जित रखी है
बापू की बिहंसती तस्वीर
सब कुछ सम्मोहित करने
जादू की तरह हो रहा
यहां प्रसादी की तरह बंट रहे
विस्फोटक विचारों के पैकेट।'

चन्द्रकांत देवताले की कविताओं की अपनी अलग तरह की बारहखड़ी है जो सबसे अलग है जिसकी भाषा में आकर्षण है, मिठास और खिंचाव है। यह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली कड़ी का काम निष्पादित करती हैं। इसलिए इनकी कविताएं अपने उसूलों पर पूरी ताकत से तनकर खड़ी होती हैं और समाज में बढ़ रही विध्वंसकारी शक्तियों पर रोक लगाती हैं क्योंकि इनकी कविताएं एक सचेतक पहरेदार की हैं, जो आने वाले वक्त के धोखों, खतरों से सावधान करती हैं। इनमें लकड़बग्घे की हंसी और 'दीवारों पर खून से' की परछाइयां हैं जिनका अपना छाया डर है। अपना निजी सपना भी है। इसलिए इनकी कविताओं का अपना स्वप्न और दु:स्वप्न है।

'वह लोटे में जलते हुए कोयले भर रही थी
वह पानी की जगह आग क्यों भर रही है
समझ में आया उसकी
जब वह लोहे को पिता के कोट पर करेंगे कभी
सलवटें अभी भी मौजूद हैं कितनी ही
चेहरे पर, पेट पर, धरती सी देह पर
अब आग किस किस में भरे वह
एक विराट कड़क लोहा को कहां कहां।'

चन्द्रकांत देवताले की कविताएं देह की अनुभूति की कविताएं नहीं बल्कि मानवीय जीवन के अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र की हैं, जिनमें संस्कृति का आचरण शिष्ट एवं विशिष्ट होता है। वह कविता को मॉडल नहीं बनने देते बल्कि उसे सामाजिक प्राकृतिक परिवेश में गूंथते हैं ताकि मनुष्य विकृत मानस से मुक्त हो सके और इसके सामने रखे अवसरों को चुनने और आगे बढ़ने के अवसरों का पूरी तरह उपयोग कर सके।

चन्द्रकांत देवताले कविता को मॉडल नहीं बनने देते बल्कि उसे सामाजिक प्राकृतिक परिवेश में गूंथते हैं ताकि मनुष्य विकृत मानस से मुक्त हो सके और इसके सामने रखे अवसरों को चुनने और आगे बढ़ने के अवसरों का पूरी तरह उपयोग कर सके। इनकी कविताओं में लौकिक भावना होती हैं जो मानवीय जीवन तथा उनके संदर्भगत यथार्थ को प्रभावित करती हैं और घर घरेलू जीवन में एक अलग ग्रेविटेशन पैदा करती हैं। इसलिए इनकी कल्पना मूल मानवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति का इम्प्रेशनिष्टक चित्र प्रस्तुत करने में कामयाब हो जाती हैं।

ई-8/73 भरत नगर, शाहपुरा, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)
मो.- 98265 59989

मध्यप्रदेश स्थापना दिवस 'गौरव' सम्मान से सम्मानित चार शख्सियत

ध्रुपद गायक उमाकांत एवं रमाकांत गुंदेचा बंधु

नर्मदा पुरूष अमृतलाल वेगड़

हरचन्दन सिंह भट्टी डिजाइन कलाकार

जनक पलटा समाजसेविका

भारत भवन में मणि मोहन का कविता पाठ

व्यंग्य पत्रिका अट्टहास का लोकार्पण

जनजाति संग्रहालय में काष्ठशिल्प(मुखौटा) और पिथौरा कार्यशालाएँ

सचिदा नागदेव :

रंग-स्मृति प्रसंग 25-27 अक्टूबर 2017

समकालीन भारतीय चित्रकला के प्रतिनिधि रंग हस्ताक्षर और जाने-माने चित्रकार स्मृति शेष सचिदा नागदेव की रंग यात्रा पर विहंगम दृष्टि डालता एक तीन दिवसीय अभिनव आयोजन चार सत्रों में विगत दिनों आवृत्ति परिसर,मानव संग्रहालय, भोपाल में संपन्न हुआ।

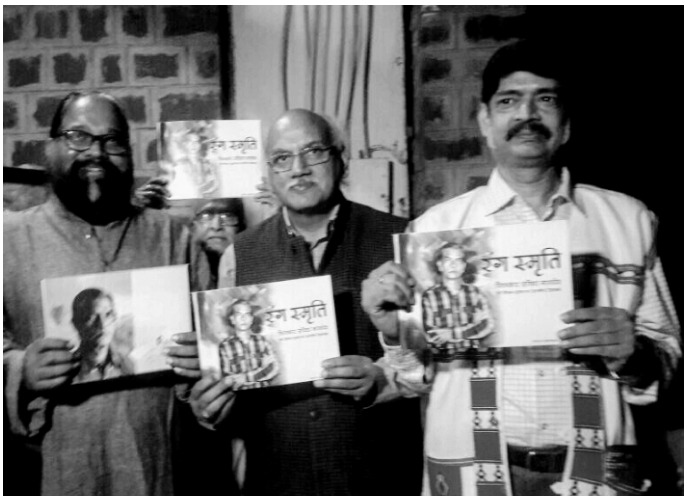

आयोजन में सचिदा नागदेव को आदरांजलि देने देश भर से विशिष्ट कलाकार-संगीतकार जुटे और अपनी-अपनी कला के प्रदर्शन के माध्यम से सचिदा की कला यात्रा के संदेश को आगे तक जारी रखने का संकल्प अभिव्यक्त किया। प्रस्तुत है चार सत्रों में संपन्न आयोजन पर एक समेकित अवलोकन

पहला सत्र

स्वर-मैत्री समूह की फ्यूज़न प्रस्तुति

संगीत की दुनिया में बहुत-सी ऐसी शख़्सियतें हुई हैं,जिनकी प्रस्तुतियों का ऑडियो के साथ-साथ वीडियो भी अनुपम रहा है.बड़े ग़ुलाम अली ख़ां अगर लंबे और कद्दावर शख़्स थे तो अमीर ख़ां साहब का व्यक्तित्व आकर्षक था ही,पंडित रविशंकर की सितार बजाते हुए तस्वीर में उनकी कॉस्मिक मुस्कान को कौन संगीतप्रेमी भूल सकता है ! उस्ताद विलायत ख़ां के होंठों पर की रूहानी जुंबिश याददाश्त से पेशे-दरकिनार भला हो भी सकती है कहीं !

पंडित कुमार गंधर्व,उस्ताद अमज़द अली ख़ां,बेग़म परवीन सुल्ताना, बेग़म अख़्तर,मदन मोहन की मंद-मंद मुस्कुराहट, और हां ! लता जी की वह सकुचाती मुस्कान याद है ना आपको !

मैं आप लोगों को बहुत ज़्यादा पशोपेश में ना डालते हुए,बता दूं कि ये बातें सुबह सवेरे के इस मंच पर जिन सुदर्शन और सुरम्य कलाकारों के बारे में कीं जा रही हैं वे हैं नीदरलैंड के डबल बास वादक सीरिल और बेल्जियम के बांसुरी वादक फ्लोरियां साथ ही साथ हमारे समय की एक अप्रतिम संगीतकार और प्रख्यात सितार वादक विदुषी स्मिता नागदेव , और हां ! इन सबके साथ तबले पर संगत करने वाले युवा मगर एक परिपक्व कलाकार रामेंद्र सोलंकी भी।

स्मिता जी के संगीत से मेरा सर्वप्रथम परिचय तीन वर्ष पूर्व आयोजित लोकरंग के संगीत कार्यक्रम 'किंदरा' के माध्यम से हुआ। देश के विभिन्न अंचलों के तंतुवाद्यों का ऐसा समागम और साथ ही उनका जीवंत संयोजन एक अविस्मरणीय अनुभूति था। प्रस्तुति के दौरान मैंने गौर किया कि जब एक वाद्य अपना आख़िरी सिरा छोड़ता और तभी जब दूसरे वाद्य को वहां से सिरा थामना होता, स्मिता जी की मुस्कान उस नई शुरूआत के प्रथम बिंदु के रूप में होती,वह भी स्वयं सितार थामे हुए।

बताता चलूं कि स्मिताजी का निर्माण जिस परिवेश ने किया है,उनमें शामिल हैं उनके यशस्वी पिताश्री मशहूर चित्रकार स्मृति शेष श्री सचिदा नागदेव, माता श्रीमती वनमाला नागदेव, आरंभिक गुरु श्री आष्टेवाले जी और तत्पश्चात् उनके सरपरस्त बने सरोद के पर्याय और हमारे मध्यप्रदेश के गौरव उस्ताद अमजद अली ख़ां. जिन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की धारा को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपना अपूर्व योगदान दिया है।

कहते हैं कोई शख़्स जब हंसता है तब उसकी चार सौ से ज़्यादा मांसपेशियां एक साथ काम कर रही होती हैं, अब इस रूपक को वैज्ञानिक संदर्भ से हटाकर अगर पुरा-परंपरा से जोड़कर देखें तो कहना यूं चाहिए कि एक शख़्स की मुस्कुराहट में उसकी समूची परंपरा भी मुस्कुराती है।

आवृत्ति परिसर के मंच पर आधुनिक फ्यूज़न संगीत के प्रतिभाशाली अंतरराष्ट्रीय कलाकारों ने अपनी सांगीतिक प्रस्तुति से सबका मन मोह लिया, इसके एक दिन पूर्व इन्हीं कलाकारों ने आईसेक्ट विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में यही प्रस्तुति दी थी इसलिए दूसरी प्रस्तुति में मेरे आनंद की द्विगुणित हो गई थी। बहरहाल संगीत सभा में पश्चिमी और भारतीय शास्त्रीय संगीत के तंतुवाद्यों का ऐसा समागम और साथ ही उनका जीवंत संयोजन देखना मेरे लिए एक अविस्मरणीय अनुभूति था। भारतीय सितार वादक सुश्री स्मिता नागदेव की हर तान के साथ नई शुरूआत प्रथम बिंदु के रूप में होना,वह भी सितार के सुरों, डबल बास वाद्य और बांसुरी की स्वर लहरियों को थामे हुए,एक दिलचस्प सांगीतिक कौशल का काम साफ दीखता था।

फ्यूज़न वैश्विक संगीत की नई शैली है जिसे युवा वर्ग ने धारण किया है, जिसे सिर्फ नई तरंग के संगीत के मंच पर ही अनुभूत किया जा सकता है वह भी कलाकारों के जीवंत वादन के दौरान। यह स्मित की निर्बाध परंपरा है जिसे स्मिताजी ने और उनके स्वर-मैत्री समूह ने धारण किया है,जिसे सिर्फ संगीत के मंच पर ही अनुभूत किया जा सकता है वह भी उनके सितार और विविध तंत्र वाद्यों के वादन के दौरान।

आप सोचकर देखिए कि नाद की एक क्रिया अगर व्योम में कहीं संपन्न हुई है और उस आवृत्ति को कोई पकड़ पा रहा है, तब तो निश्चित ही उस क्रिया का कर्ता इस समीकरण का इति सिद्धम अंतत: मुस्कान के साथ ही करेगा।

स्वर-मैत्री समूह के इन अंतरराष्ट्रीय कलाकारों ने सांगीतिक संध्या में मानव संग्रहालय के आवृत्ति परिसर को इस तरह तरंगित कर दिया कि लगा हम सब सरहदों से परे हैं और संगीत की स्वर लहरियां हम सबको अटूट रूप से बांधे हुए हैं, सचमुच सचिदा नागदेव को संगीतकार बेटी की इस आदरांजलि को अविस्मरणीय सौगात की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस आयोजन की पहल करने में कला पारखी और मार्गदर्शी व्यक्तित्व संतोष चौबे, सरित कुमार चौधरी और आई.ए.एस.अधिकारी हरिरंजन राव की महत्वपूर्ण भूमिका के उल्लेख के बगैर यह आलेख अधूरा होगा।

फिराक़ की पंक्तियां याद आती हैं - **यारो बाहम बिखरे पड़े हुए हैं टुकड़े कायनात के, एक फूल को जुंबिश दोगे, दूर कहीं एक तारा कांप उठेगा।**

फिल्म प्रदर्शन; इस सत्रारंभ के पूर्व सचिदा के कृतित्व - व्यक्तित्व को समेटती एक फिल्म का प्रदर्शन किया गया, आईसेक्ट विश्वविद्यालय की यह निर्मिति अन्य शैक्षणिक संस्थानों के लिए एक प्रेरणा का काम करेगी कि कला- संस्कृति का शिक्षण सिर्फ किताबी काम नहीं है। निस्संदेह इस फिल्म ने सचिदा एकाग्र आयोजन के लिए पूर्व पीठिका का काम किया।

विचार सत्र

नरेंद्र नागदेव, जो कि उनके छोटे भाई हैं और सुपरिचित कथाकार भी, ने सचिदा से जुड़ी वैयक्तिक और रचनात्मक प्रेरणाओं को साझा किया,इसी कड़ी में सचिदा के बड़े भाई रमाकांत नागदेव ने सचिदा की दृढ़ इच्छाशक्ति, जिजीविषा और लगन के गुणों की व्याख्या दिलचस्प संस्मरणों के माध्यम से की। वरिष्ठ चित्रकार अखिलेश व कलाकार रॉबिन डेविड व भालू मोंढे तथा मुंबई के ख्यात क्यूरेटर दादीबा ने भी संस्मरणों में सचिदा को गौरवमयी आदरांजलि अर्पित की। विचार सत्र के अगले चरण में सचिदा की रंग यात्रा की स्मृतियों की निरंतरता प्रदान करते हुए वक्ताओं में धूमिमल आर्ट गैलरी की संचालक उमा जैन व उनके सुपुत्र उदय जैन ने

घोषणा की कि सचिदा की स्मृतियों को चिर- स्थायी बनाने के उद्देश्य से देश के प्रतिभाशाली चित्रकारों के लिए फेलोशिप स्थापित की जाएगी तथा अगले वर्ष एक एकाग्र आयोजन कर सचिदा की रंग यात्रा पर व्यवस्थित ढंग से एक अंतरराष्ट्रीय स्तर की पुस्तक का प्रकाशन व फिल्म का निर्माण किया जाएगा। आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति व लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार संतोष चौबे ने सचिदा से जुड़े हर भावी उपक्रम से संबद्ध रहने की प्रतिबद्धता को दोहराया, अपने प्रभावी वक्तव्य में संतोष जी ने सचिदा के रंगों के संयोजन से उपजते मनोभावों की सूक्ष्म विवेचना की और कहा कि वे अपने समय से आगे के कलाकार थे। कला मर्मज्ञ एवं वरिष्ठ आई.ए.एस., डॉ.के.के.चक्रवर्ती ने पुरा भारतीय चित्र परंपरा के सोदाहरण उल्लेख के साथ सचिदा के काम को जोड़ा और रेखांकित किया कि प्रकृति के साथ एकाकार हो जाना ही सचिदा के कला व्यक्तित्व की विशेषता है। अंतिम वक्तव्य कला गुरू वसंत चिंचवड़कर का रहा जिसमें उन्होंने सचिदा की आत्मीय यादें साझा कीं। संचालन करते हुए भोपाल के रंग-शब्द के वरिष्ठ हस्ताक्षर श्रीकांत आप्टे ने अपनी विशिष्ट शैली से विमर्श को रोचक बनाए रखा। इस अवसर पर कलाविद् भालू मोंढे ने स्मृति स्वरूप अपनी एक चित्रकृति स्मिता नागदेव को भेंट की। संचालन की बात हो और कला समीक्षक विनय उपाध्याय की बात न हो तो यह ग़ैर मौजूं होगा, हमेशा की तरह यहां भी संगीत सभाओं का सुरम्य संचालन उन्होंने किया।

तीसरा सत्र

कबीर की परंपरा के पथ पर सारे कलाकारों की यात्रा मुकम्मल होती रही है। पद्मश्री प्रहलाद टिपाण्या और उनके गुणी सुपुत्र अजय टिपाण्या ने साथियों के साथ मिलकर आयोजन में रूहानी ताक़त भरी और सचिदा के कलाकर्म को कबीर के अल्फाज़ों से मानीखेज़ बनाया।

समापन सत्र

देश के लब्ध- प्रतिष्ठ शिल्पकार प्रमोद कांबले ने समापन सत्र में अपनी चित्रकारी व मूर्ति निर्माण प्रक्रिया व मूर्ति शिल्पकला के जीवंत प्रदर्शन से एक ऐसा रचनात्मक संदेश सबके भीतर प्रवेश कराया जिसके बारे में अनुभूति की रचनात्मक प्रक्रिया जानने वालों का कहना है कि जो रचेगा वही जानेगा, इसीलिए एक कलाकार की रचना प्रक्रिया की सीमाएं अनंत की ओर चली जाती मालूम पड़ती हैं। कहना न होगा सचिदा नागदेव की याद में संपन्न हुआ यह रंग-स्मृति आयोजन सबकी स्मृति में टिमटिमाते तारे के सप्तरंगी प्रकाश के रूप में अंकित हुआ और स्मिता नागदेव सहित इसके तीनों प्रायोजक इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, आईसेक्ट विश्वविद्यालय और मध्यप्रदेश पर्यटन बोर्ड इस अप्रतिम प्रक्रम के लिए साधुवाद के पात्र हैं ।

सौजन्य : राग तेलंग ■

'जलतरंग'
बेस्ट उपन्यास 2016 से सम्मानित

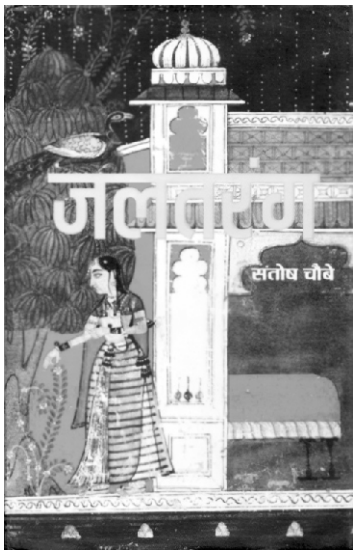

कथाकार, संस्कृतिकर्मी, शिक्षाविद् संतोष चौबे का उपन्यास 'जलतरंग' देहरादून इंटरनेशनल लिटरेचर फेस्टिवल वैली ऑफ वर्ड्स में सम्मानित किया गया। प्रसिद्ध उपन्यास जलतरंग जो भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित तथा भारत भवन की अंतरंग सभागार में मंचित तथा मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा 'जलतरंग' उपन्यास को शैलेष मटियानी राष्ट्रीय कथा सम्मान से भी पुरस्कृत हैं। संतोष चौबे ने अपने उपन्यास 'जलतरंग' की विषय वस्तु पर अपने विचार साझा किये।

सुविख्यात लेखिका कृष्णा सोबती को ज्ञानपीठ सम्मान

वर्ष 1980 में कृष्णा सोबती जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। आपका जन्म गुजरात(पाकिस्तान) में 18 फरवरी 1925 को हुआ था, विभाजन के बाद आप दिल्ली आकर बस गई। आपको ''ज़िंदगीनामा'' कृति के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। वर्ष 1986 में उन्हें साहित्य अकादमी फेलो बनाया गया जो अकादमी के सर्वोच्च सम्मान है। आपको साहित्य अकादमी दिल्ली की ओर से वर्ष 2001 में शलाका सम्मान दिया गया था। आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं- डार से बिछुड़ी, यारों के यार, बादलों के घेरे, ए लड़की, दिलो दानिश, समय सरगम आदि आपको 53 वें ज्ञानपीठ सम्मान वर्ष 2017 देने की घोषणा हुई है, बहुत-बहुत बधाई और अभिनन्दन।

- रपट: घनश्याम मैथिल 'अमृत'

अपने भीतर कलादृष्टि विकसित करें : कला पत्रकार

सप्रे संग्रहालय में लोक संवाद के तहत कला पत्रकारिता पर कार्यशाला का आयोजन

भोपाल। कला पत्रकारिता आसान काम नहीं है। कला,संस्कृति की रिपोर्टिंग से जुड़े लोगों के लिए जरूरी है कि वे अपने भीतर कलादृष्टि विकसित करें। आज कला गतिविधियों से जुड़े समाचारों को मीडिया में जगह तो बहुत मिल रही है लेकिन इनमें कथ्य का अभाव है। मौका था कला पत्रकारिता पर आयोजित कार्यशाला का। इस कार्यशाला का आयोजन संग्रहालय द्वारा प्रतिमाह आयोजित की जाने वाली श्रृंखला लोक संवाद के तहत किया गया था।

संग्रहालय की परंपरानुसार इसमें विषय विशेषज्ञों के सूत्र उद्बोधन के बाद उपस्थित प्रतिभागियों तथा विशेषज्ञों के बीच आपसी संवाद भी हुआ। वक्तव्यों की शुरुआत करते हुए सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता और रंगकर्मी राजीव वर्मा ने इस बात की सराहना तो की कि आज समाचार पत्रों में कला की खबरों को व्यापक स्थान मिल रहा है लेकिन यह समीक्षा न होकर सिर्फ रिपोर्टिंग ही रह गई है। उन्होंने अन्य विषयों की तरह ही कला की खबरों को भी विस्तार और सम्मान जनक जगह दिए जाने की

आवश्यकता बताई। लोक कला मर्मज्ञ बसंत निरगुणे ने कहा कि खबरों में उस कला या विधा से जुड़ी बातें नहीं आ पाती। इसके पीछे पत्रकारों की कला के प्रति समझ का अभाव होना एक बड़ा कारण है। उन्होंने पत्रकारों को सलाह दी कि वे कला के प्रतिदृष्टि विकसित करें। सुप्रसिद्ध सिरेमिक कलाकार देवीलाल पाटीदार का कहना था कि खबरें स्थानीयता से आगे बढ़ें। साथ ही उन्होंने पत्रकारों को सुझाव दिया कि खाली समय में वे कलाकारों के पास जाकर उनकी कार्यशैली को समझें। फिल्म समीक्षक सुनील मिश्रा ने कहा कि कला पत्रकारों में तन्मयता की कमी नहीं है लेकिन यदि संपादक भी उस रुचि का मिल जाये तो उसकी खबरें और निखर जाती हैं। रंगकर्मी विवेक मृदुल का मानना था कि आज तकनीकी संसाधन विकसित हो जाने से पत्रकार बैठे.बैठे ही जानकारी पाना चाहता है। इस प्रवृत्ति पर रोक लगनी चाहिए। उन्होंने कला की खबरों सही स्थान न मिलने के लिए प्रबंधन की रुचि को भी जिम्मेदार बताया। सुप्रसिद्ध कला पत्रकार और समीक्षक विनय उपाध्याय ने कहा कि कला की पत्रकारिता में लगे लोग इसे नौकरी न समझकर इसमें व्यक्तिगत रुचि लें। उन्होंने भाषा विकसित करने की सलाह भी नए पत्रकारों को दी। साहित्यकार डॉ. रामवल्लभ आचार्य ने कहा कि पत्रकारों के सामने समस्यायें हो सकती हैं लेकिन इसके रास्ते भी निकालने होंगे। साहित्यकार एवं वरिष्ठ आईएएस अधिकारी राजीव शर्मा ने कहा कि आज कला पत्रकारिता का विस्तार हुआ है। उन्होंने कला से जुड़ी विभिन्न विधाओं के विषयों पर अलग-अलग ऐसी ही कार्यशालाएं आयोजित की जाने की जरूरत बताई। फिल्म समीक्षक विनोद नागर ने फिल्म समीक्षा के गुर बड़ी बारीकी से बताये। साहित्यकार एवं पत्रकार युगेश शर्मा ने भी विषयवार कार्यशाला आयोजित कर इस पहल को आगे बढ़ाने का सुझाव दिया। साहित्यकार अशोक मनवानी ने पुराने पत्रकारों को नई पीढ़ी के पत्रकार तैयार करने का सुझाव दिया। वरिष्ठ पत्रकार राकेश दुबे ने कहा कि आज इन विषयों की समझ बढ़ी है। हालांकि उन्होंने कला से जुड़ी रंगसंधान जैसी पत्रिकाओं के बंद होने की घटना पर दुख भी जताया। प्रतिभागी के रूप में बोलते हुए पत्रकार राजेश गाबा ने कहा कि आज के पत्रकारों के सामने भी पहले की तरह ही चुनौतियां हैं। इसमें समय और जगह का अभाव प्रमुख है। इस तरह की कार्यशालाएं इन समस्याओं का रास्ता निकाल सकती हैं। कार्यशाला का संयोजन एवं संचालन दीपक पगारे ने किया था। वर्कशॉप में पत्रकारों के अलावा बड़ी संख्या में साहित्य.संस्कृति से जुड़े लोग मौजूद रहे। – दीपक पगारे

लखनऊ में डॉ. श्रीमती बिनय षडंगी राजाराम को राष्ट्रधर्म हिंदी सेवा सम्मान 2017

उत्तर प्रदेश के माननीय राज्यपाल श्री राम नायक ने 12 नवम्बर 2017 को लखनऊ में आयोजित एक विशेष समारोह में डॉ. श्रीमती बिनय षडंगी राजाराम को अपने साहित्य द्वारा हिंदी की अनुपम सेवा के लिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा संस्थापित, माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा प्रथम सम्पादित पत्रिका 'राष्ट्रधर्म' की ओर से रूपये 30 हजार की सम्मान राशि सह ''राष्ट्रधर्म हिंदी सेवा सम्मान 2017'' से विभूषित किया गया। समारोह में प्रदेश के माननीय उप-मुख्यमंत्री सहित बड़ी संख्या में राष्ट्रीय स्तर के साहित्यकार तथा गण्यमान्य साहित्यप्रेमी उपस्थित थे।

कला समय का लोकार्पण

मध्यप्रदेश स्थापना दिवस पर भोपाल पधारे श्री अमृतलाल वेगड़ एवं श्रीमती कान्ता वेगड़ द्वारा होटल लेक व्यू अशोक में 'कला समय' पत्रिका का लोकार्पण किया। साथ में सजल मालवीय, साहित्य परामर्श एवं भँवरलाल श्रीवास, संपादक, कला समय।

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

सांस्कृतिक धड़कनों का जीवंत दस्तावेज़

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक तथा आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कूरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय का पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com

लेखकों/ कलाकारों से ❍ कला-संस्कृति के अछूते पहलुओं पर सर्जनात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबन्ध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई, अथवा सुवाच्य लिपि में अंकित हों। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेज सकते हैं।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक/ द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपना सदस्यता नवीनीकरण करायें।

❊ कला समय ❊

आगामी विशेषांक - ''विलुप्त होती लोक कलाएँ''

रचनाएँ, चित्र, आलेख, शोध आमंत्रित

- संपादक

वरिष्ठ संगीत गुरु, सितार वादक शरद तेलंग नहीं रहे।

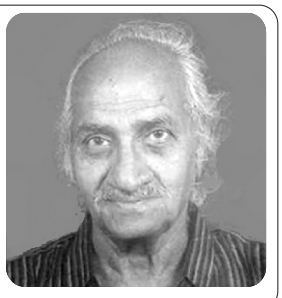

सुप्रसिद्ध कवि राग तेलंग के पिता शरद तेलंग (नरेन्द्र शंकर तेलंग) संस्कारधानी के वरिष्ठ संगीत गुरु एवं प्रतिष्ठित सितार वादक का हृदय घात से दिनांक 18 नवम्बर 2017 को उनके निज निवास भोपाल में निधन हो गया है।

कला समय परिवार के ओर से नमन।

संस्था समाचार

कला समय

पाठक-मंच
पत्रिकाओं का लोकार्पण

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाजसेवा समिति ने पत्रिका 'कला समय' और 'शिवम् पूर्णा' का लोकार्पण तथा विचार-विमर्श आयोजन की शुरूआत बैरसिया से हुई।

(बैरसिया) भोपाल। शासकीय स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय, बैरसिया में 'कला समय' द्वैमासिकी के नवीनतम प्रकाशित अंक का लोकार्पण हुआ। कला समय पाठक मंच की श्रृंखला एक समारोह के मुख्य अतिथि, 'कला समय' संपादक भँवरलाल श्रीवास की उपस्थिति, वहीं अध्यक्षता प्राचार्या डॉ. अलका सक्सेना ने की। समारोह के विशिष्ट अतिथि सजल मालवीय 'शिवम् पूर्णा' मासिकी के साहित्य संपादक की उपस्थिति में 'शिवम् पूर्णा' के नवीनतम अंक का भी लोकार्पण किया गया। विशेष अतिथि के रूप में 'कला समय' सह संपादक लक्ष्मीकांत जवणे, एवं डॉ. अनिल दुबे उपस्थित थे। लोकार्पण समारोह के उपरान्त गीतकार सजल मालवीय ने जल आधारित गीतों का स्वर पाठ किया। इस अवसर पर भंवरलाल श्रीवास एवं लक्ष्मीकांत जवणे ने अपने विचार अभिव्यक्त किए। श्रीवास ने उभरते हुए कलमकार और कलाकारों को अपनी कलम और कूची को उठाने का विनम्र आह्वान किया। वहीं जवणे जी ने उपस्थित युवाओं को खबर, के महत्व को बताते हुए, अतिरोचक ढंग स्वाध्याय और संस्कार को अपनाने पर जोर दिया।

सफल मंच संचालन, डॉ. गोपेश वाजपेयी ने किया। श्रीवास ने विचार उपरांत अपनी 'रतजगा' कविता का पाठ किया। नवांकुर कवि छात्रों में कमलेश सेन, सरस्वती वंदना, स्वागत गीत, दिव्यांशी साहू ने, गीत, रानी कुशवाह ने काव्यपाठ किया।

समारोह में कला समय पाठक मंच जिला भोपाल के अध्यक्ष डॉ. आर.के शर्मा, डॉ. शोएब खान, डॉ. वंदना शर्मा, डॉ. मीनाक्षी श्रोत्री, डॉ. बबन सेयके, डॉ. चंद्रकांता अहिरवार विशेष रूप से उपस्थित रही। कला समय श्रृंखला एक का यह समारोह बुद्धिजीवियों में चर्चा का विषय बना रहा। कला समय पाठक-मंचश्रृंखला दो, समारोह शीघ्र ही किसी नये शहर में आयोजित होगा।

रपट-गोपेश वाजपेयी

श्रद्धांजलि

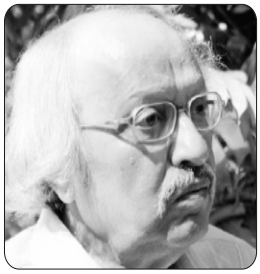

चन्द्रकांत देवताले : हिन्दी कविता के सुप्रसिद्ध कवि, जन्म : 7 नवम्बर 1936
निधन : 14 अगस्त 2017

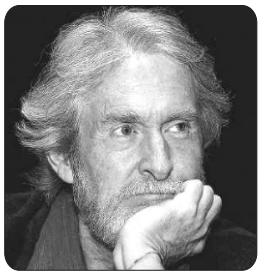

टॉम अल्टर : मशहूर भारतीय फिल्म एक्टर, जन्म : 22 जून 1950
निधन : 29 सितम्बर 2017

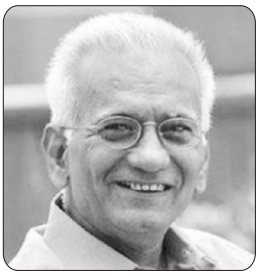

कुन्दन शाह : जाने-माने फिल्म निर्देशक, जन्म : 19 अक्टूबर 1947
निधन : 7 अक्टूबर 2017

गिरिजा देवी : विख्यात हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायिका, जन्म : 8 मई 1929
निधन : 24 अक्टूबर 2017

कृष्ण शलभ : प्रसिद्ध गीतकार, जन्म : 18 जुलाई 1945
निधन : 31 अक्टूबर 2017

कुँअर नारायण : प्रख्यात हिन्दी कवि, जन्म : 19 सितम्बर 1927
निधन : 15 नवम्बर 2017

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

– निर्मिश ठाकर

सरोजिनी नायडू

सुनीता विलियम्स

उमा भारती

काजोल

D82390

62 वाँ स्थापना दिवस
एक नवंबर
मध्यप्रदेश स्थापना दिवस
वह दिन है जब
हमारा मध्यप्रदेश
अस्तित्व में आया।
यह अवसर है
गौरव का, हर्ष का,
आनंद का, उल्लास का...
श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री
आइए, अपने प्यारे मध्यप्रदेश को नयी ऊंचाइयों पर ले जाने का संकल्प लें ...
स्थापना दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं
– शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
/CMMadhyaPradesh /CMMadhyaPradesh /ChouhanShivrajSingh Download App - Shivraj Singh Chouhan
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

कला और लोक के आलोक में - रानी रूपमती

रानी रूपमती का मण्डप, माण्डवगढ़

रानी रूपमती - बाजबहादुर 18 वीं शताब्दी अप्रकाशित

रानी रूपमती का मण्डप, माण्डवगढ़

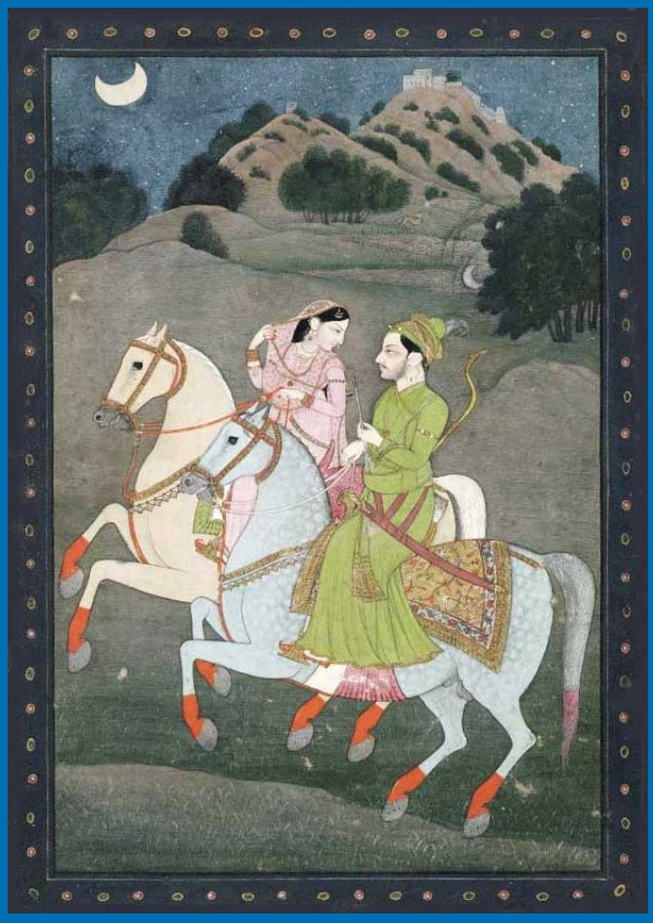

रानी रूपमती-बाजबहादुर पहाड़ी शैली 18वीं शताब्दी ब्रिटिश संग्रहालय-अप्रकाशित

रानी रूपमती-बाजबहादुर डेकन शैली 18वीं शताब्दी अप्रकाशित फ्रांस संग्रहालय

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वात्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास